ऋषि प्रसाद

वर्ष : १३
अंक : १२०
९ दिसम्बर २००२
मार्गशीर्ष मास, विक्रम संवत् २०५९
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय 'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा (गांधीनगर), साबरमती, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : पारिजात प्रिन्टरी, राणीप और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

अनुक्रम

१. तत्त्व दर्शन — २
※ दुःख का कारण
२. गीता-अमृत — ३
※ गीता का अविकम्प योग
३. श्रीमद्भगवद्गीता — ५
※ तीसरे अध्याय का माहात्म्य
४. प्रेरणादायी सूत्र — ७
५. श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण — ८
※ बंधन किसको है ?
६. साधना प्रकाश — ९
※ महानता के चार सिद्धांत
७. सत्संग सरिता — १०
※ परिश्रम और मजदूरी
८. कथा प्रसंग — १२
※ क्षमा बड़न को होत है... ※ बाबा की दाढ़ी अच्छी...
※ ब्रह्मचारी के अपमान का परिणाम
९. गुरुनिष्ठा — १५
※ आज्ञा सम नहीं साहेब सेवा...
१०. जीवन पाथेय — १७
※ दीनता और अभिमान
११. पर्व मांगल्य — १८
※ मानव को महेश्वर बनाने की क्षमता है...
※ गीताग्रंथ विश्व में अद्वितीय है
※ आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति का महाद्वार...
※ वेद का सार है गीता
१२. भक्ति भागीरथी — २१
※ भक्त भद्रतनु
१३. युवा जागृति — २३
※ सरदार वल्लभभाई पटेल की निर्भयता
१४. नारी ! तू नारायणी — २५
※ आपमें भी छुपी हैं ये शक्तियाँ...
१५. जीवन पथदर्शन — २७
※ एकादशी माहात्म्य
१६. अमरिकी किशोर आत्महत्या करना चाहते हैं ! — २८
१७. स्वास्थ्य संजीवनी — २९
※ पीपल का वृक्ष
१८. भक्तों के अनुभव — ३०
※ चार बार भगवन्नाम जप से अद्भुत लाभ
१९. संस्था समाचार — ३०

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०
'*संकीर्तन*' सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

दुःख का कारण

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

परमात्मा ज्ञानस्वरूप, आनंदस्वरूप और सुखस्वरूप है। वह प्रकृति से परे है। यदि मन प्रकृति की चीजों में भटकता है तो बुद्धि में राग-द्वेष उत्पन्न होता है और मन शांत होता है तो बुद्धि स्थिर हो जाती है तथा भगवत्शांति प्रकट हो जाती है। बाहर चाहे दुःख का कैसा भी निमित्त हो, भीतर शांति बनी रहती है।

एक तो दुःख के निमित्त से दुःख होता है। दूसरा 'मैं दुःखी हूँ' - ऐसा सोचने से दुःख होता है। तीसरा दुःखाकार वृत्ति से दुःख होता है।

कभी दुःख का निमित्त होते हुए भी यदि दुःखाकार वृत्ति नहीं बनती तो दुःख नहीं होता। जैसे - बच्चा चलते-चलते गिर पड़ा, उसको ठोकर लगी तो दुःख का निमित्त तो बना लेकिन उसकी दुःखाकार वृत्ति नहीं बनी तो वह हँसते-हँसते उठ खड़ा होता है। अथवा तो चतुर माँ उसकी वृत्ति दुःखाकार बनने से पहले ही सुखाकार बना देती है तो वह दुःखी नहीं होता।

लेकिन दुःख-निवृत्ति ही जीवन का उद्देश्य नहीं है। जीवन का उद्देश्य है - परमानंद की प्राप्ति। दुःख होते हुए भी जिसे दुःख स्पर्श नहीं कर सकता, वह आत्मा मैं हूँ - ऐसा ज्ञान जरूरी है। अन्यथा कोई दुःख नहीं है तो बिस्तर पर पड़े-पड़े व्यक्ति करवट लेता रहता है कि कोई दुःख नहीं है। लेकिन यह परमानंद की प्राप्ति नहीं है। इससे तो आलस्य पैदा होगा और व्यक्ति बीमार होकर दुःख व पराधीनता की खाई में गिर जायेगा। दुःख का निमित्त न होते हुए भी दुःख बना लेगा।

अपने दुःख का कारण किसीको मत मानो। जो लोग अपने दुःख का कारण दूसरों को मानते हैं, उनके चित्त में द्वेष बना रहता है और वे जलते रहते हैं, तपते रहते हैं। जो अपने दुःख का कारण किसी और को मानेगा उसका दुःख बढ़ता जायेगा, घटेगा नहीं। अपने दुःख का कारण अपना अज्ञान है, अपनी नासमझी है, अपने कर्म हैं।

अपने दुःख का कारण अपनी बेवकूफी मानकर उसे हटाना चाहिए। जो दूसरों को अपने दुःख का कारण मानते हैं उनकी बेवकूफी बढ़ती है, उनका दुःख बढ़ता है।

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

कोई किसीके सुख-दुःख का कारण नहीं है, अपने ही कर्म और विचार से मनुष्य सुख-दुःख पाता है।

जो तुम्हारा शत्रु है, वह किसीका मित्र भी तो है। हमारे ही पुण्यकर्म सामनेवाले के अंतःकरण में हमारे लिए सद्भाव पैदा कर देते हैं और हमारे ही पापकर्म सामनेवाले के हृदय में दुर्भावना पैदा कर देते हैं। किसीसे न राग करें न द्वेष। राग आदमी को पराधीन कर देता है और द्वेष आदमी को हिंसक बना देता है। द्वेष का त्याग करना है तो अपने स्वभाव में क्षमाशीलता लायें। अगर क्षमाशीलता आयेगी तो हिंसा अहिंसा में बदल जायेगी, क्रोध शांति में बदल जायेगा, घृणा प्रेम में बदल जायेगी।

करना है तो क्षमा करो, द्वेष न करो। जानना है तो इसने क्या किया ? उसने क्या किया ? इस जानकारी में समय नष्ट मत करो वरन् परमेश्वर को जानो। मानना है तो अपने को शरीर मत मानो, न ही शरीर के सम्बन्धों को सच्चा मानो वरन् अपने को भगवान का मानो तो बेड़ा पार हो जाय...

❊ बुरे कार्यों में अपनी शक्ति खर्च करना बहुत बड़े दुःख को निमंत्रण देकर बुलाना है।
❊ दुःख में धैर्य तथा सुख में समता रखने से अंतःकरण में खूब शांति रहती है।

गीता का अविकम्प योग

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

शास्त्र कहते हैं कि जब तक सामनेवाला पूछे नहीं, नम्र न हो तब तक ऊँची बात नहीं बोलनी चाहिए, किंतु अर्जुन के न पूछने पर भी भगवान बोलते हैं। जैसे - कोई अन्धा गड्डे में गिरता हो, उसको नहीं दिखता किंतु आपको दिखता है तो आपका हृदय थोड़े ही मानेगा कि चुप बैठें। ऐसे ही भगवान देखते हैं कि ये जीव बेचारे अलग-अलग ढंग से माया की खाई में गिर रहे हैं। इसीलिए भगवान बोलते हैं और अधिकारी-भेद से अलग-अलग बोलते हैं।

भगवान ने उद्धव से कहा : 'तुम सब कुछ छोड़कर बदरीकाश्रम में जाओ और मैंने जो उपदेश दिया है, उसका अभ्यास करके मुझसे ऐसे मिलो जैसे - दूध से दूध। जैसे, सागर की लहर सागर से मिलती है, ऐसे ही जीवात्मा मुझ अंतर्यामी परमात्मा से मिले।'

भगवान ने अर्जुन से कहा : 'मेरा स्मरण करते हुए युद्ध कर और मुझसे मिल। कर्म करते हुए मुझसे मिल।'

संयमी राजा अंबरीष से भगवान ने कहा : 'एकादशी का उपवास करो, प्रजा का ठीक से पालन करो और कर्ता, धर्ता एवं भोक्ता महेश्वर है - ऐसा समझकर कर्म करते जाओ। जो कर्म का प्रेरक और फलदाता है उस ईश्वर का स्मरण करके सत्कर्म करते हुए, राजकाज करते हुए मुझसे मिलो।'

भगवान ने गोपियों से कहा : 'तुम जहाँ भी हो, जैसी भी हो किंतु किसकी हो, यह सदा याद रखो।'

दूध दुहते रहो, दही बिलोते रहो, गाय चराते रहो किंतु किसके लिए कर रहे हो और वह कैसा है, यह सदा याद रखो। वह ईश्वर है, सर्वगुण-सम्पन्न है, महान है यह भी मत सोचो। जैसा-तैसा है किंतु वह हमारा है। यशोदा की ओखली से बंधता है लेकिन है हमारा कन्हैया !

भगवान से अपनत्व रखने से तुम्हारी प्रीति कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग हो जायेगी। भक्ति कैसी होनी चाहिए ? नारदजी ने कहा कि **यथा गोपिकानाम्**। जैसी गोपियों की थी। श्रीकृष्ण ने पढ़े-लिखे उद्धव को अनपढ़ गोपियों से उपदेश दिलवाया !

पाँचवें तरीके से उपदेश देते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा :

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

'यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पाप-समुद्र से भलीभाँति तर जायेगा।' **(गीता : ४.३६)**

इन ५ तरीकों में से कोई भी तरीका अपने जीवन में नहीं है तो जीवन वर्तमान में भी विक्षेप और विलासिता से भरा होगा और भविष्य में भी दुःखदायी होगा। चाहे संसारी स्वार्थ का जीवन हो चाहे भगवत्प्राप्ति का... परोपकार के बिना जीवन में निखार नहीं आता। परोपकार तो करें किंतु 'बेचारे दीन-हीन हैं'- ऐसी बुद्धि से नहीं, जिनकी सेवा करते हो 'उनमें मेरा परमात्मा है'- इस भाव से सेवा करें।

यह अर्जुन का जमाना नहीं है, युद्ध की अभी जरूरत नहीं है। सब कुछ छोड़कर बद्रीनाथ जाओ ऐसा भी मैं नहीं कहता। किंतु आपसे वही कहता हूँ जो भगवान ने अंबरीष से कहा।

'सबकी गहराई में मेरा परमात्मा है।'- यह दृष्टिकोण आपके जीवन में अविकम्प योग लायेगा। यदि आपकी यह समझ है तो युद्ध करते हुए, राज्य करते हुए, रोटी बनाते हुए, गुरु के दैवी कार्य करते हुए भी आपका अविकम्प योग हो जायेगा।

आप पूजा-मंदिर में रहे तो आपका योग हुआ,

किंतु बाहर आये तो आपका योग कम्पित हो गया। आप समाधि में रहे तो आपका योग रहा, आप व्यवहार में आये तो समाधि नहीं है, आपका योग कम्पित हो गया।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥

'जो पुरुष मेरी इस परमैश्वर्यरूप विभूति को और योगशक्ति को तत्त्व से जानता है, वह निश्चल भक्तियोग से युक्त हो जाता है - इसमें कोई संदेह नहीं है।' **(गीता : १०.७)**

इस अविकम्प योग को समझने से आप कर्म करते हुए भी भगवान की भक्ति में सफल हो जाओगे, इसमें संशय मत करो।

आज के युग में तुमको कहें कि 'तुम हिमालय चले जाओ, समाधि करो, भगवान को पाओ फिर संसार में आओ' तो यह तुम्हारे बस की बात नहीं है। तुमको कहें कि 'तुम गोपियों कीं नाईं भक्ति करो' तो यह भी तुम्हारे बस की बात नहीं है।

तुम जहाँ हो, जैसे हो, पढ़े हो या अनपढ़ हो, मंदिर में हो चाहे दुकान में हो लेकिन तुम्हारा दृष्टिकोण बदल जाय। जहाँ-जहाँ सौन्दर्य दिखे, जहाँ-जहाँ शुभ दिखे, मंगलमय दिखे वहाँ भगवान का वैभव है। जहाँ-जहाँ विघ्न-बाधा दिखे, गड़बड़ दिखे वहाँ भगवान के अनुशासन की शक्ति काम कर रही है - ऐसा समझें। जैसे, हाथी अपने रास्ते से चलता है तो ठीक, नहीं तो महावत ऊपर से नियन्त्रण करता है। ऐसे ही यह जीवात्मा अपने ईश्वरत्व को पाने के लिए आया है लेकिन अगर रास्ता भूलता है और कुछ गलत करता है तो देर-सवेर उसको तकलीफ होती है।

जैसे - माँ बच्चे को सुख-सुविधा और मिठाई देकर भी मंगल चाहती है और कभी-कभी बच्चे के न चाहते हुए भी उसकी नाक दबोचकर साफ करती है, साबुन रगड़कर नहला-धुलाकर तैयार करती है। माँ की चेष्टाएँ बच्चे को अच्छी नहीं लगती लेकिन माँ की सारी चेष्टाएँ बच्चे की भलाई के लिए होती हैं।

आपके जीवन में कभी चढ़ाव आता है तो कभी उतार आता है। किंतु उतार में आप मायूस न होना और चढ़ाव में आप फूलना मत। चढ़ाव और उतार - ये जीवन के ताने-बाने हैं। हो सकता है कि जीवन में यदि विघ्न-बाधाएँ न आतीं तो ऐसा सत्संग न मिलता अथवा संत की कृपा न होती तो ऐसा सत्संग न मिलता।

कभी चिंतित न हों, कभी दुःखी न हों। चिंता आये तो चिंतित न हों वरन् विचार करो कि चिंता आयी है तो मन में आयी है। चिंता नहीं थी तब भी कोई था, चिंता है तब भी कोई है और चिंता आयी है तो जायेगी भी क्योंकि जो आता है वह जाता भी है।

चिंता से आप जुड़ जाते हैं तो कमजोर हो जाते हैं, दुःखी हो जाते हैं। अहंकार से आप जुड़ जाते हैं तो परेशान हो जाते हैं। सफलता से जुड़ जाते हैं तो अहंकार आता है और विफलता से जुड़ जाते हैं तो चिंतित हो जाते हैं। यदि आप इनसे न जुड़े तो ये आपको मजबूत बनाकर चले जायेंगे।

बीमार या तन्दुरुस्त किसीका तन हो सकता है, अच्छा या बुरा किसीका मन हो सकता है, बुद्धू या विद्वान किसीकी बुद्धि हो सकती है लेकिन वह तो वही है जो तू है। जहाँ से तू 'मैं' बोलता है, तेरा वही 'मैं' आत्मदेव है। मित्र की गहराई में भी तू है और शत्रु की गहराई में भी तू है। भगवान कहते हैं कि 'मेरी विभूति को देखें। जहाँ-जहाँ सुन्दर-सुहावना है, उस सुन्दर वस्तु और व्यक्ति की गुलामी न करें। उसको जो सुन्दरता और सुहावनापन मिला है, वह मुझ आत्मा का है। मैं आत्मरूप से सबके साथ हूँ।' इस प्रकार की नजर आपको अविकम्प योग के राजमार्ग पर ला देती है।

जैसे, अँगूठी, चेन आदि गहने अलग होते हैं किंतु सबका मूल पदार्थ सोना एक है, तरंग और बुलबुले अनेक होते हैं किंतु सागर का पानी एक होता है, ऐसे ही जीवों की आकृतियाँ अनेक होती हैं किंतु सबकी गहराई में सच्चिदानंद चैतन्य परमात्मा एक ही है। नजर एक सच्चिदानंद परमात्मा पर रहे तो हो गया - **अविकम्प योग**। पूजा-पाठ, जप-तप, साधन-भजन करके इस अविकम्प योग का अभ्यास करना चाहिए।

तीसरे अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान कहते हैं : प्रिये ! जनस्थान में एक जड़ नामक ब्राह्मण था, जो कौशिक वंश में उत्पन्न हुआ था। उसने अपना जातीय धर्म छोड़कर बनिये की वृत्ति में मन लगाया। उसे परायी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने का व्यसन पड़ गया था। वह सदा जुआ खेलता, शराब पीता और शिकार खेलकर जीवों की हिंसा किया करता था। इसी प्रकार उसका समय बीतता था। धन नष्ट हो जाने पर वह व्यापार के लिए बहुत दूर उत्तर दिशा में चला गया। वहाँ से धन कमाकर घर की ओर लौटा। बहुत दूर तक का रास्ता उसने तय कर लिया था। एक दिन सूर्यास्त हो जाने पर जब दसों दिशाओं में अन्धकार फैल गया, तब एक वृक्ष के नीचे उसे लुटेरों ने धर दबोचा और शीघ्र ही उसके प्राण ले लिये। उसके धर्म का लोप हो गया था, इसलिए वह बड़ा भयानक प्रेत हुआ।

उसका पुत्र बड़ा धर्मात्मा और वेदों का विद्वान था। उसने कुछ समय तक पिता के लौट आने की राह देखी। जब वे नहीं आये, तब उनका पता लगाने के लिए वह स्वयं भी घर छोड़कर चल दिया। वह प्रतिदिन खोज करता, मगर राहगीरों से पूछने पर भी उसे उनका कुछ समाचार नहीं मिलता था। तदनन्तर एक दिन एक मनुष्य से उसकी भेंट हुई, जो उसके पिता का सहायक था, उससे सारा हाल जानकर उसने पिता की मृत्यु पर बहुत शोक किया। वह बड़ा बुद्धिमान था। बहुत कुछ सोच-विचारकर पिता का पारलौकिक कर्म करने की इच्छा से आवश्यक सामग्री साथ ले उसने काशी जाने का विचार किया। मार्ग में सात-आठ पड़ाव डालकर वह नौवें दिन उसी वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ उसके पिता मारे गये थे। उस स्थान पर उसने संध्योपासना की और गीता के तीसरे अध्याय का पाठ किया। इसी समय आकाश में बड़ी भयानक आवाज हुई। उसने अपने पिता को भयंकर आकार में देखा, फिर तुरंत ही अपने सामने आकाश में उसे एक सुन्दर विमान दिखाई दिया, जो महान तेज से व्याप्त था। उसमें अनेकों क्षुद्र घंटिकाएँ लगी थीं। उसके तेज से समस्त दिशाएँ आलोकित हो रही थीं। यह दृश्य देखकर उसके चित्त की व्यग्रता दूर हो गयी। उसने विमान पर अपने पिता को दिव्य रूप धारण किये विराजमान देखा। उनके शरीर पर पीताम्बर शोभा पा रहा था और मुनिजन उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखते ही पुत्र ने प्रणाम किया, तब पिता ने भी उसे आशीर्वाद दिया।

तत्पश्चात् उसने पिता से सारा वृत्तान्त पूछा। उसके उत्तर में पिता ने सब बातें बताकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया : 'बेटा ! दैववश मेरे निकट गीता के तृतीय अध्याय का पाठ करके तुमने इस शरीर के द्वारा किये हुए दुस्त्यज कर्मबंधन से मुझे छुड़ा दिया। अतः अब घर लौट जाओ क्योंकि जिसके लिए तुम काशी जा रहे थे, वह प्रयोजन इस समय तृतीय अध्याय के पाठ से ही सिद्ध हो गया है।' पिता के यों कहने पर पुत्र ने पूछा : 'तात ! मेरे हित का उपदेश दीजिये तथा और कोई कार्य जो मेरे लिए करने योग्य हो बतलाइये।' तब पिता ने उससे कहा : 'अनघ ! तुम्हें यही कार्य फिर करना है। मैंने जो कर्म किये हैं, वही मेरे भाई ने भी किये थे। इससे वे घोर नरक में पड़े हैं। उनका भी तुम्हें उद्धार करना चाहिए तथा मेरे कुल के और भी जितने लोग नरक में पड़े हैं, उन सबका भी तुम्हारे द्वारा उद्धार हो जाना चाहिए। यही मेरा मनोरथ है। बेटा ! जिस साधन के द्वारा तुमने मुझे संकट से छुड़ाया है, उसीका अनुष्ठान औरों के लिए भी करना उचित है। उसका अनुष्ठान करके उससे होनेवाला पुण्य उन नारकी जीवों को संकल्प करके दे दो। इससे वे समस्त पूर्वज मेरी ही तरह यातना से मुक्त हो स्वल्पकाल में ही श्रीविष्णु के परम पद को प्राप्त हो जायेंगे।'

पिता का यह सन्देश सुनकर पुत्र ने कहा : 'तात ! यदि ऐसी बात है और आपकी भी ऐसी ही रुचि है तो मैं समस्त नारकी जीवों का नरक से उद्धार कर दूँगा।' यह सुनकर उसके पिता बोले : 'बेटा ! एवमस्तु। तुम्हारा कल्याण हो। मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य सम्पन्न हो गया।' इस प्रकार पुत्र को आश्वासन देकर उसके पिता भगवान विष्णु के परम धाम को

चले गये। तत्पश्चात् वह भी लौटकर जनस्थान में आया और परम सुन्दर भगवान श्रीकृष्ण के मन्दिर में उनके समक्ष बैठकर पिता के आदेशानुसार गीता के तीसरे अध्याय का पाठ करने लगा। उसने नारकी जीवों का उद्धार करने की इच्छा से गीतापाठजनित सारा पुण्य संकल्प करके दे दिया। इसी बीच में भगवान विष्णु के दूत यातना भोगनेवाले नारकी जीवों को छुड़ाने के लिए यमराज के पास गये। यमराज ने नाना प्रकार के सत्कारों से उनका पूजन किया और कुशलता पूछी। वे बोले : 'धर्मराज ! हम लोगों के लिए सब ओर आनंद-ही-आनंद है।' इस प्रकार सत्कार करके पितृलोक के सम्राट परम बुद्धिमान यम ने विष्णुदूतों से यमलोक में आने का कारण पूछा।

तब विष्णुदूतों ने कहा : यमराज ! शेषशय्या पर शयन करनेवाले भगवान विष्णु ने हम लोगों को आपके पास कुछ सन्देश देने के लिए भेजा है। भगवान हम लोगों के मुख से आपका कुशल पूछते हैं और यह आज्ञा देते हैं कि 'आप नरक में पड़े हुए समस्त प्राणियों को छोड़ दें।'

अमित तेजस्वी भगवान विष्णु का यह आदेश सुनकर यम ने मस्तक झुकाकर उसे स्वीकार किया और मन-ही-मन कुछ सोचा। तत्पश्चात् मदोन्मत्त नारकी जीवों को नरक से मुक्त देखकर उनके साथ ही वे भगवान विष्णु के वास-स्थान को चले। यमराज श्रेष्ठ विमान के द्वारा जहाँ क्षीरसागर है, वहाँ जा पहुँचे। उसके भीतर उन्होंने कोटि-कोटि सूर्यों के समान कांतिमान नील कमल-दल के समान श्यामसुन्दर लोकनाथ जगद्गुरु श्रीहरि के दर्शन किये। भगवान का तेज उनकी शय्या बने हुए शेषनाग के फणों की मणियों के प्रकाश से दुगना हो रहा था। वे आनंदयुक्त दिखाई दे रहे थे। उनका हृदय प्रसन्नता से परिपूर्ण था। भगवती लक्ष्मी अपनी सरल चितवन से प्रेमपूर्वक उन्हें बार-बार निहार रही थीं। चारों ओर योगीजन भगवान की सेवा में खड़े थे। ध्यानस्थ होने के कारण उन योगियों की आँखों के तारे निश्चल प्रतीत होते थे। देवराज इन्द्र अपने विरोधियों को परास्त करने के उद्देश्य से भगवान की स्तुति कर रहे थे। ब्रह्माजी के मुख से निकले हुए वेदान्त-वाक्य मूर्तिमान होकर भगवान के गुणों का गान कर रहे थे। भगवान पूर्णतः संतुष्ट होने के साथ ही समस्त योनियों की ओर से उदासीन प्रतीत होते थे। जीवों में से जिन्होंने योग-साधन के द्वारा अधिक पुण्य संचय किया था, उन सबको एक ही साथ वे कृपादृष्टि से निहार रहे थे। भगवान अपने स्वरूपभूत अखिल चराचर जगत को आनंदपूर्ण दृष्टि से आमोदित कर रहे थे। शेषनाग की प्रभा से उद्भासित और सर्वत्र व्यापक दिव्य विग्रह धारण किये नील कमल के सदृश श्याम वर्णवाले श्रीहरि ऐसे जान पड़ते थे, मानों चाँदनी से घिरा हुआ आकाश सुशोभित हो रहा हो। इस प्रकार भगवान की झाँकी के दर्शन करके यमराज अपनी विशाल बुद्धि के द्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

यमराज बोले : सम्पूर्ण जगत का निर्माण करनेवाले परमेश्वर ! आपका अंतःकरण अत्यंत निर्मल है। आपके मुख से ही वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है। आप ही विश्वस्वरूप और इसके विधायक ब्रह्मा हैं। आपको नमस्कार है। अपने बल और वेग के कारण जो अत्यन्त दुर्धर्ष प्रतीत होते हैं, ऐसे दानवेन्द्रों का अभिमान चूर्ण करनेवाले भगवान विष्णु को नमस्कार है। पालन के समय सत्त्वमय शरीर धारण करनेवाले, विश्व के आधारभूत, सर्वव्यापी श्रीहरि को नमस्कार है। समस्त देहधारियों की पातक-राशि को दूर करनेवाले परमात्मा को प्रणाम है। जिनके ललाटवर्ती नेत्र के तनिक-सा खुलने पर भी आग की लपटें निकलने लगती हैं, उन रुद्ररूपधारी आप परमेश्वर को नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विश्व के गुरु, आत्मा और महेश्वर हैं, अतः समस्त वैष्णवजनों को संकट से मुक्त करके उन पर अनुग्रह करते हैं। आप माया से विस्तार को प्राप्त हुए अखिल विश्व में व्याप्त होकर भी कभी माया अथवा उससे उत्पन्न होनेवाले गुणों से मोहित नहीं होते। माया तथा मायाजनित गुणों के बीच में स्थित होने पर भी आप पर उनमें से किसीका प्रभाव नहीं पड़ता। आपकी महिमा का अंत नहीं है, क्योंकि आप असीम हैं फिर आप वाणी का विषय कैसे हो सकते हैं ? अतः मेरा मौन रहना ही उचित है।

इस प्रकार स्तुति करके यमराज ने हाथ जोड़कर कहा : 'जगद्गुरो ! आपके आदेश से इन जीवों को गुणरहित होने पर भी मैंने छोड़ दिया है। अब मेरे योग्य और जो कार्य हो, उसे बताइये।'

उनके यों कहने पर भगवान मधुसूदन मेघ के समान गम्भीर वाणी द्वारा मानो अमृतरस सींचते हुए बोले : 'धर्मराज ! तुम सबके प्रति समान भाव रखते हुए लोकों का पाप से उद्धार कर रहे हो । तुम पर देहधारियों का भार रखकर मैं निश्चिन्त हूँ। अतः तुम अपना काम करो और अपने लोक को लौट जाओ।'

यों कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये। यमराज भी अपनी पुरी को लौट आये । तब वह ब्राह्मण अपनी जाति के और समस्त नारकी जीवों का नरक से उद्धार करके स्वयं भी श्रेष्ठ विमान द्वारा श्रीविष्णुधाम को चला गया।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

किंतु हे अर्जुन ! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। (७)

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं तो भी जिसका अंतःकरण अहंकार से मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है। (२७)

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है । अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देनेवाला है। (३५)

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगों से कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषय में वैरी जान। (३७)

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

इस प्रकार बुद्धि से पर अर्थात् सूक्ष्म, बलवान और अत्यंत श्रेष्ठ आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके हे महाबाहो ! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रु को मार डाल। (४३)

❊ पूज्यश्री के सत्संग-प्रवचन से संकलित ❊

❊ गीता में कर्म को कर्मयोग में बदलने का सामर्थ्य है। गीता की दृष्टि बहुत ऊँची है।

❊ जो साधक परमात्मा या सद्गुरु को समर्पित हो जाता है, उसके जीवन में शांति और शक्ति दोनों एक साथ ही उद्भूत हो जाते हैं। क्योंकि समर्पण भाव से शरण्य की शक्ति और ज्ञान ये दोनों समर्पित व्यक्ति को प्रसाद रूप में सुलभ हो जाते हैं।

❊ कर्मभूमि, युद्धभूमि, संघर्षभूमि या भोगभूमि में रहते हुए अपने समस्त क्रियाकलाप परमात्मा को समर्पित करते रहें। तभी अविचल शांति की प्राप्ति संभव है।

❊ इसी जीवन में गीता के योग को आत्मसात् करने के लिए दृढ़ पुरुषार्थ करो। कभी-कभी एकान्त में ध्यान, योग एवं साधना करके अपने चित्त को निष्काम बनाते चलो। वही निष्कामता दैनिक व्यवहार में तुम्हें कर्मयोग का प्रसाद चखाती है। अपने साधन-भजन का समय केवल एक-दो घंटा ही है ऐसा कभी न मानना। यह समय तो निश्चित है ही, लेकिन प्रवृत्ति के समय भी हृदय-शुद्धि का ध्यान रखते हुए गीता के समत्वयोग का अनुभव करने के लिए दृढ़निश्चयी बन जाओ। लग जाओ, सजग हो जाओ। समय भाग रहा है।

❊ सत्संग के वचन और आत्मस्वरूप का चिंतन निरंतर चलता रहे। चित्त की अवस्था में नित्य साम्यता रहे इस पर अत्यधिक ध्यान दें।

❊ नित्य अपने साथ शिक्षाप्रद श्लोक, सुवाक्य या स्तोत्र रखो। दिन में जब भी समय मिले, उनका लाभ लो। कुछ ही दिनों में तुम्हें एक निराला आनंद, आत्मा-परमात्मा की अनोखी झाँकियाँ दिखने लगेंगी।

❊ सुख-दुःख में सतर्क और सम रहने की योग्यता का अपने में विकास करो। आँख सदा के लिए मूँद जाय इसके पहले आत्मज्ञान की आँखें खोल लो। जीवन की संध्या हो जाय उसके पहले जीवनदाता से पहचान साध लो।

बंधन किसको है ?

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है कि **वह आनंदस्वरूप अपना आत्मा ही परमेश्वर है।**

हम नित्य सुख चाहते हैं, सदा सुख चाहते हैं और सहज में सुख चाहते हैं। फिर भी यह मिले तो सुखी होऊँ, यहाँ जाऊँ तो सुखी होऊँ, ऐसा करूँ तो सुखी होऊँ... मन की इस बेवकूफी के पीछे सारी जिंदगी बिता देते हैं। इसलिए सदा सुख पाने के लिए जिससे किया जाता है उसीमें डूबने का यत्न करें।

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोरे संग सहाई ॥

राजकोट के मूल निवासी त्रिवेणीपुरी महाराज, जिनका मुंबई में बहुत बड़ा आश्रम है, वे केदारनाथ में गंगा के तट पर कुटिया बनाकर रहते थे। 'ईश्वर से ईश्वर को ही माँगते हैं फिर भी अभी तक मुक्ति का अनुभव क्यों नहीं हो रहा है ?' ऐसा विचारकर वे रोते थे। उनकी ईश्वरप्राप्ति की प्यास बहुत बढ़ गयी थी।

एक शाम को एक बुढ़िया ने आकर कहा :

''त्रिवेणीपुरी ! आप किससे मुक्त होना चाहते हैं ?''

त्रिवेणीपुरी : ''माताजी ! मुझे मोक्ष का अनुभव करना है।''

वृद्धा : ''आप किससे मुक्त होना चाहते हैं ? पत्नी से मुक्त होकर संन्यासी हो गये हैं। परिवार से मुक्त होना चाहा तो उसे भी छोड़कर आये हैं। अब किससे मुक्त होना चाहते हैं ? आपको बंधन कहाँ है ? खोजें। खोजते-खोजते अगर बंधन को खोज लिया तो मैं आऊँगी, अगर खोजते-खोजते बंधन नहीं मिला तो नहीं आऊँगी।''

इतना कहकर वह वृद्धा चली गयी। त्रिवेणीपुरी महाराज खोजने लगे कि बँधे हैं तो किससे बँधे हैं ? मुक्ति किससे चाहिए ? अगर धन से बँधे होते तो धन हमेशा रहना चाहिए, किंतु रुपये-पैसे आते हैं और चले जाते हैं। अगर सुख से बँधे होते तो सुख सदा रहना चाहिए, परंतु वह भी आता-जाता है। अगर दुःख से बँधे होते तो दुःख सदा रहना चाहिए, किंतु वह भी आकर चला जाता है। शरीर भी प्रतिदिन मृत्यु की ओर जा रहा है तो बंधन किसको है ? एकान्त में बैठकर खोजते गये तो पता चला कि अरे ! मैं तो निर्बंध नारायण था- मुझे पता न था। ऐसा करते-करते उनकी समाधि लग गयी और उन्हें ज्ञान हो गया। वे बड़े उच्च कोटि के संत हो गये। अब वे हयात नहीं हैं लेकिन मुंबई में अभी भी उनका आश्रम है। अखंडानंदजी उनसे मिलते-जुलते रहते थे।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : 'हे रामजी ! जैसे रण में प्राण निकलने लगें तो भी शूरवीर नहीं भागता बल्कि विजय पाने की इच्छा से शस्त्र को पकड़कर युद्ध करता ही रहता है, ऐसे ही संसार में शास्त्र का विचार ही पुरुषार्थ है। यही पुरुषार्थ करो और शास्त्रों के अनुसार विचारो कि मुक्ति क्या है ? जो विचार से रहित हैं, वे दुर्भाग्य और दीनता को प्राप्त होते हैं।'

जिसने आत्मविचार को त्यागा है समझो, उसने अपना सर्वनाश कर लिया। वह बड़ा अभागा है। वास्तविक सुखी केवल विचारवान ही होता है। विचार यही है कि सत् क्या है और असत् क्या है ? साथ क्या जायेगा और क्या छूट जायेगा ? मैं कौन हूँ और जगत क्या है ? जिसने ऐसा विचार ठीक से किया है उसका भविष्य उज्ज्वल है। जिसने अपना आत्मविचार नहीं किया समझो, वह मुसीबत में पड़ेगा। अगर आत्मविचार नहीं करता है तो पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी मूर्ख है और अगर आत्मविचार करता है तो अनपढ़ भी पठितों का पूजनीय है।

पैसा गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ-कुछ गया परंतु अंतरात्मा की शांति चली गयी तो सब कुछ चला गया। इसलिए आत्मानंद, आत्मशांति पाने का ही यत्न करना चाहिए।

महानता के चार सिद्धांत

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

महानता के चार सिद्धांत हैं : (१) हृदय की प्रसन्नता (२) उदारता (३) नम्रता (४) समता।

(१) हृदय की प्रसन्नता : जिसका हृदय जितना प्रसन्न, वह उतना ज्यादा महान होता है। जैसे - श्रीकृष्ण प्रसन्नता की पराकाष्ठा पर हैं। ऋषि का श्राप मिला है, यदुवंशी आपस में ही लड़कर मार-काट मचा रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं, फिर भी श्रीकृष्ण की बंसी बज रही है...

(२) उदारता : श्रीकृष्ण प्रतिदिन सहस्रों गायों का दान करते थे। कुछ-न-कुछ देते थे। धन और योग्यता तो कइयों के पास होती है, लेकिन देने का सामर्थ्य सबके पास नहीं होता। जिसके पास जितनी उदारता होती है, वह उतना ही महान होता है।

(३) नम्रता : श्रीकृष्ण नम्रता के धनी थे। सुदामा के पैर धो रहे हैं श्रीकृष्ण ! देखा कि पैदल चलते-चलते सुदामा के पैरों में काँटे चुभ गये हैं; उन्हें निकालने के लिए रुक्मिणीजी से सुई मँगवायी। सुई लाने में देर हो रही थी तो अपने दाँतों से ही काँटा खींचकर निकाला और सुदामा के पैर धोये... कितनी नम्रता !

युधिष्ठिर आते तो वे उठकर खड़े हो जाते थे। पाण्डवों के संधिदूत होकर गये और वहाँ से लौटे तब भी उन्होंने युधिष्ठिर को प्रणाम करते हुए कहा : 'महाराज ! हमने तो कौरवों से संधि करने का प्रयत्न किया, किंतु हम विफल रहे।'

ऐसे तो चालबाज लोग और सेठ लोग भी नम्र दिखते हैं ! परंतु केवल दिखावटी नम्रता नहीं, हृदय की नम्रता होनी चाहिए। हृदय की नम्रता आपको महान बना देगी।

(४) समता : श्रीकृष्ण तो मानो, समता की मूर्ति थे। इतना बड़ा महाभारत का युद्ध हुआ, फिर भी कहते हैं कि 'कौरव-पाण्डवों के युद्ध के समय यदि मेरे मन में पाण्डवों के प्रति राग न रहा हो और कौरवों के प्रति द्वेष न रहा हो तो मेरी समता की परीक्षा के अर्थ यह बालक जीवित हो जाय।' और बालक (परीक्षित) जीवित हो उठा...

जिसके जीवन में ये चार सद्गुण हैं, वह अवश्य महान हो जाता है। नम्र व्यक्ति बड़े-बड़े कष्टों और क्लेशों से छूट जाता है और दूसरों के हृदय में भी अपना प्रभाव छोड़ जाता है। जबकि अहंकारी व्यक्ति बड़ी-बड़ी विघ्न-बाधाओं से जूझते-जूझते थक जाता है और अपने दुश्मन बढ़ा लेता है।

नम्रता व्यक्ति को महान बनाती है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ-तहाँ बदमाश, लुच्चे और ठगों को भी प्रणाम करते रहें। नम्रता कहाँ और कैसे दिखानी - यह विवेक भी होना चाहिए। दुष्ट के आगे नम्र बनोगे तो वह आपको बुद्धू मानेगा। अपने शोषक के आगे नम्र हो जाओगे तो वह ज्यादा शोषण करेगा; अतः विवेक का उपयोग करें।

रावण और कंस के जीवन में अहंकार था तथा श्रीराम और श्रीकृष्ण के जीवन में प्रसन्नता, उदारता, नम्रता, समता आदि सद्गुण थे। परिणाम क्या हुआ ? सारी दुनिया जानती है।

ये चारों सद्गुण कैसे आते हैं ?

धर्म का आश्रय लेने से। जो अपना कर्तव्य ठीक से निभाता है, वह प्रसन्न रहता है। माता-पिता के दिल को दुःखाकर, चोरी करके, दूसरों को सताकर कोई प्रसन्न रह सकता है क्या ? नहीं। सदा प्रसन्न रहने के लिए सदाचार, पवित्रता, सात्विकता आदि सद्गुणों का आश्रय लेना होता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पदा के प्रथम तीन श्लोकों को अपने आचरण में लाकर अपना जीवन सार्थक करें।

धर्म क्या है ? कोई आपके यहाँ चोरी करता है तो आपको अच्छा नहीं लगता, इसलिए आप किसीकी चोरी न करो। आपसे कोई धोखा करता है तो आपको अच्छा नहीं लगता, अतः आप भी किसीसे धोखा न करो। आपके कोई हाथ-पैर तोड़ दे या आपका अहित करे तो आपको अच्छा नहीं लगता, इसलिए आप भी किसीका अहित न करो। लेकिन कोई आपको डण्डा मारने आये तो रक्षा के लिए आपको भी डण्डा उठाना पड़ेगा। हिंसा करना तमोगुण है, प्रतिहिंसा करना रजोगुण है और अहिंसक बनना सत्त्वगुण है।

प्रसन्न वही रह सकता है, जिसके पास धर्म है, संयम है। जिसकी इंद्रियाँ और मन जितने उसके नियंत्रण में हैं, उतना ही वह प्रसन्न, उदार, नम्र और सम रह सकता है।

जिसके जीवन में ये चार सद्गुण नहीं हैं, वह बाहर से कितना भी ऊँचा दिखे, अंत में थक जायेगा, हार जायेगा, निराश हो जायेगा... जिसके जीवन में ये चार सद्गुण हैं, वह महान होता जायेगा...

विचार बिन्दु

विषयों से निवृत्त हो जाना ही तृप्ति है।

श्रद्धा से सत्य, भविष्य में मिलता है। शोध से सत्य, वर्तमान में मिलता है।

जितनी निवृत्ति व त्याग होगा, उतनी परमात्मशांति तत्काल मिलेगी।

श्रद्धा व नियमपूर्वक साधना करो।

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

परिश्रम और मजदूरी

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

परिश्रम दो प्रकार का होता है : शारीरिक और मानसिक। कई लोग कुदाली-फावड़े चलाकर शारीरिक परिश्रम करते हैं तो कई विचारों को दौड़ाकर मानसिक परिश्रम करते हैं। ज्ञानी दोनों परिश्रम छोड़कर स्वरूप में बैठे हैं, इसीलिए वे दोनों के गुरु हैं। स्थूल परिश्रम छोड़कर जितने सूक्ष्म बनोगे, सामर्थ्य उतना ही ज्यादा आयेगा।

पटरियों पर दौड़ती रेलगाड़ी को इंजन खींच ले जाता है, क्योंकि डिब्बों की अपेक्षा इंजन में ज्यादा सूक्ष्मता है। इंजन पर भी ड्राइवर के हाथ का नियंत्रण है। हाथ पर नियंत्रण है ड्राइवर के मन का। मन में गाड़ी को चलाने का संकल्प हो तो हाथ को इंजन चलाने का आदेश मिल जाता है और रोकने का संकल्प करे तो हाथ ब्रेक पर पहुँच जाता है। इस प्रकार ड्राइवर का मन गाड़ी के डिब्बों, इंजन और उसके शरीर से भी सूक्ष्म है, इसीलिए वह इन सब पर राज्य करता है।

इस मन से भी सूक्ष्म है बुद्धि और बुद्धि से भी सूक्ष्म है आत्मा। आत्मा की सत्ता से ही मन में स्फुरणा होती है और मन पुनः आत्मा में लीन होता है। इससे सबसे ज्यादा सामर्थ्यवान है आत्मा। यह आत्मा कहीं दूर नहीं है वरन् हमारा मूल स्वरूप ही है।

ज्ञानी महापुरुष इस रहस्य को पूर्णरूप से जान लेते हैं, इसीलिए सबसे ज्यादा सामर्थ्य के धनी होते हैं। बाहर से निष्क्रिय जैसे दिखते हुए भी ज्ञानी

के एक संकल्पमात्र से पूरे विश्व में बदलाहट आने लगती है। नंगे पैर तीर्थयात्रा, गंगास्नान, चान्द्रायण आदि व्रत, शरीर को सताकर किये गये उपवास - इन सबसे जो पुण्य मिलता है, उससे ज्यादा पुण्य, शांति और आनंद का अनुभव आत्मसाक्षात्कारी महापुरुषों के दर्शन-सत्संग से होता है। उनके क्षणमात्र के कृपा-कटाक्ष से अज्ञानी जीव के जन्मों-जन्मों के बंधन कट जाते हैं।

मजदूर को सारे दिन के शारीरिक परिश्रम से क्या मिलता है ?

''बाबाजी ! दो पाली में मजदूरी करता हूँ, तब भी पूरा नहीं पड़ता।''

कहाँ से होगा ? और अगर हो भी गया तो क्या ? सब अधूरा है। उससे केवल स्थूल शरीर का पोषण होगा। काम तो तब पूरा होगा जब परम सूक्ष्मता में पहुँचोगे, आत्मा को जानोगे, परमात्मा को पाओगे, आत्मसाक्षात्कार करोगे...

इसमें कोई मजदूरी नहीं है, परिश्रम नहीं है। सौदा सस्ता है लेकिन लोग यह सौदा करने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें जन्मों से ही नहीं, सदियों से मजदूरी करने की आदत पड़ गयी है। उनके हृदय में ऐसी ग्रंथि पड़ गयी है कि कुछ मेहनत करने से ही सब मिलता है। बाह्य जीवन में उनकी इस ग्रंथि को पोषण भी मिलता है लेकिन परमात्मा को पाने के लिए इन सब ग्रंथियों को छोड़ देना पड़ेगा।

शरीर और मन की मजदूरी छोड़ दो। शरीर की मजदूरी शायद होती भी रहे, शरीर से सेवा होती भी रहे परंतु मन की मजदूरी को, संकल्प-विकल्पों के जाल को तो काटो ही। शरीर का श्रम तो अनिवार्य है, मन के संकल्प-विकल्प का श्रम छोड़ने से बेड़ा पार है।

आत्मनिष्ठ महापुरुष के सान्निध्य में जाओ। उनकी उपस्थिति में संकल्प-विकल्प कम होते जायेंगे और एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम निःसंकल्प अवस्था में आ जाओगे। उस समय वह परम समर्थ तुम्हारा आत्मदेव प्रकट हो जायेगा और तुम उस अवस्था में स्थिर हो जाओगे।

लोग जब ध्यान करने बैठते हैं, तब भी भारी होकर बैठते हैं। शारीरिक परिश्रम छोड़कर मानसिक परिश्रम चालू कर देते हैं। अरे भाई ! ध्यान को बोझ नहीं बनाना है, ध्यान से तो आनंदमय होना है। गुरु गोरखनाथ ने कहा है :

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसंती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बौले ताका नाँव धरहुगे कैसा॥
हसिबो खेलिबो धरिबा ध्यानं। अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियानं।
हंसै षेलै न करे मन भंग। ते निहचल सदा नाथ कै संग॥

हँसते-खेलते, प्रसन्न होकर ध्यान करो, आत्मचिंतन करो, रात-दिन ब्रह्मज्ञान की चर्चा करो। आत्मनिरीक्षण करो कि 'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? किसलिए आया हूँ ? कहाँ जाना है ? मेरा परम कर्तव्य क्या है ? जीव क्या है ? जगत क्या है ?' आदि। इन प्रश्नों की गहराई में उतरो और अपने अस्तित्व की गहराई में से इनके जवाब ढूँढ़ निकालो। शास्त्र के सिद्धांत, गुरु के उपदेश और स्वानुभव की कसौटी पर उन जवाबों को कसो। भूसी साबित हों उन्हें फेंक दो और दाने साबित हों उन्हें सँभाल लो।

जो साधक इस आत्मचिंतन में ही दिन-रात लगा रहता है, यथायोग्य खाता-पीता है किंतु संसार के विषयों में मन को आसक्त नहीं होने देता और आत्मचिंतन की धारा को टूटने नहीं देता, वह साधक सहज ही सिद्धस्वरूप में जग जाता है।

हसिबो खेलिबो धरिबा ध्यानं... ऐसे तो मूर्ख लोग भी हँसते-खेलते हैं, 'हा-हा-ही-ही' में पूरा जीवन बिता देते हैं। उनकी 'हा-हा-ही-ही' और साधकों की प्रसन्नता में बड़ा फरक है।

वे विषय-लम्पट हैं, नट-नटियों का चिंतन करते हैं, विषय-विकारों का चिंतन करते हैं, राग-द्वेष में फँसते हैं जबकि साधक निर्विषय आध्यात्मिक आनंद पाने के मार्ग पर है। वह परमात्मा का ध्यान करता है, विषय-विकारों को पैरों तले कुचलकर, राग-द्वेष के जाल को काटकर गुणातीत होने का प्रयत्न करता है।

मूर्ख लोग संसाररूपी कीचड़ में कीड़े की तरह बिलबिलाते हैं, जबकि साधक कीचड़ में रहकर भी गगनगामी दृष्टि रखकर ऊपर उठता है और कमल

के एक संकल्पमात्र से पूरे विश्व में बदलाहट आने लगती है। नंगे पैर तीर्थयात्रा, गंगास्नान, चान्द्रायण आदि व्रत, शरीर को सताकर किये गये उपवास - इन सबसे जो पुण्य मिलता है, उससे ज्यादा पुण्य, शांति और आनंद का अनुभव आत्मसाक्षात्कारी महापुरुषों के दर्शन-सत्संग से होता है। उनके क्षणमात्र के कृपा-कटाक्ष से अज्ञानी जीव के जन्मों-जन्मों के बंधन कट जाते हैं।

मजदूर को सारे दिन के शारीरिक परिश्रम से क्या मिलता है ?

''बाबाजी ! दो पाली में मजदूरी करता हूँ, तब भी पूरा नहीं पड़ता।''

कहाँ से होगा ? और अगर हो भी गया तो क्या ? सब अधूरा है। उससे केवल स्थूल शरीर का पोषण होगा। काम तो तब पूरा होगा जब परम सूक्ष्मता में पहुँचोगे, आत्मा को जानोगे, परमात्मा को पाओगे, आत्मसाक्षात्कार करोगे...

इसमें कोई मजदूरी नहीं है, परिश्रम नहीं है। सौदा सस्ता है लेकिन लोग यह सौदा करने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें जन्मों से ही नहीं, सदियों से मजदूरी करने की आदत पड़ गयी है। उनके हृदय में ऐसी ग्रंथि पड़ गयी है कि कुछ मेहनत करने से ही सब मिलता है। बाह्य जीवन में उनकी इस ग्रंथि को पोषण भी मिलता है लेकिन परमात्मा को पाने के लिए इन सब ग्रंथियों को छोड़ देना पड़ेगा।

शरीर और मन की मजदूरी छोड़ दो। शरीर की मजदूरी शायद होती भी रहे, शरीर से सेवा होती भी रहे परंतु मन की मजदूरी को, संकल्प-विकल्पों के जाल को तो काटो ही। शरीर का श्रम तो अनिवार्य है, मन के संकल्प-विकल्प का श्रम छोड़ने से बेड़ा पार है।

आत्मनिष्ठ महापुरुष के सान्निध्य में जाओ। उनकी उपस्थिति में संकल्प-विकल्प कम होते जायेंगे और एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम निःसंकल्प अवस्था में आ जाओगे। उस समय वह परम समर्थ तुम्हारा आत्मदेव प्रकट हो जायेगा और तुम उस अवस्था में स्थिर हो जाओगे।

लोग जब ध्यान करने बैठते हैं, तब भी भारी होकर बैठते हैं। शारीरिक परिश्रम छोड़कर मानसिक परिश्रम चालू कर देते हैं। अरे भाई ! ध्यान को बोझ नहीं बनाना है, ध्यान से तो आनंदमय होना है। गुरु गोरखनाथ ने कहा है :

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसंती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बौले ताका नाँव धरहुगे कैसा॥
हसिबो खेलिबो धरिबा ध्यानं। अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियानं।
हंसै षेलै न करे मन भंग। ते निहचल सदा नाथ कै संग॥

हँसते-खेलते, प्रसन्न होकर ध्यान करो, आत्मचिंतन करो, रात-दिन ब्रह्मज्ञान की चर्चा करो। आत्मनिरीक्षण करो कि 'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? किसलिए आया हूँ ? कहाँ जाना है ? मेरा परम कर्तव्य क्या है ? जीव क्या है ? जगत क्या है ?' आदि। इन प्रश्नों की गहराई में उतरो और अपने अस्तित्व की गहराई में से इनके जवाब ढूँढ़ निकालो। शास्त्र के सिद्धांत, गुरु के उपदेश और स्वानुभव की कसौटी पर उन जवाबों को कसो। भूसी साबित हों उन्हें फेंक दो और दाने साबित हों उन्हें सँभाल लो।

जो साधक इस आत्मचिंतन में ही दिन-रात लगा रहता है, यथायोग्य खाता-पीता है किंतु संसार के विषयों में मन को आसक्त नहीं होने देता और आत्मचिंतन की धारा को टूटने नहीं देता, वह साधक सहज ही सिद्धस्वरूप में जग जाता है।

हसिबो खेलिबो धरिबा ध्यानं... ऐसे तो मूर्ख लोग भी हँसते-खेलते हैं, 'हा-हा-ही-ही' में पूरा जीवन बिता देते हैं। उनकी 'हा-हा-ही-ही' और साधकों की प्रसन्नता में बड़ा फरक है।

वे विषय-लम्पट हैं, नट-नटियों का चिंतन करते हैं, विषय-विकारों का चिंतन करते हैं, राग-द्वेष में फँसते हैं जबकि साधक निर्विषय आध्यात्मिक आनंद पाने के मार्ग पर है। वह परमात्मा का ध्यान करता है, विषय-विकारों को पैरों तले कुचलकर, राग-द्वेष के जाल को काटकर गुणातीत होने का प्रयत्न करता है।

मूर्ख लोग संसाररूपी कीचड़ में कीड़े की तरह बिलबिलाते हैं, जबकि साधक कीचड़ में रहकर भी गगनगामी दृष्टि रखकर ऊपर उठता है और कमल

की तरह जीवन को स्वच्छ, निर्लेप, सुंदर और सुरभित करता है।

यदि वेदान्ती जीवन जिया जाय तो देश के सभी प्रश्न हल हो जायें। ऐसे साधनों की जरूरत नहीं है जो देशवासियों की इच्छा-वासना भड़कायें वरन् ऐसे वातावरण की जरूरत है, जिससे उन्हें संयम-सदाचार, सादगीपूर्ण और तेजस्वी जीवन जीने की प्रेरणा मिले, वे अपना कर्तव्यपालन करने में तत्पर बनें, अपने दैनिक जीवन में, नौकरी-धंधे में छल-कपट छोड़कर कुटुम्ब का, समाज का, देश का हित हो ऐसा आचरण करें।

ऐसा वातावरण मिलेगा वेदान्ती जीवन जीनेवाले महापुरुषों के चरणों में... वे महापुरुष आत्मा-परमात्मा के अनुभव से सम्पन्न होते हैं। वही परमात्मा, सबमें स्थित सर्वेश्वर, अनेकों में छुपा हुआ एक ईश्वर, कर्मफल का दाता, हमारे कर्मों का साक्षी, हमारे सभी कर्मों को निहार रहा है... ऐसे ज्ञान की समाज और देश को जरूरत है।

यदि देशवासियों को इस वेदान्त दर्शन का ज्ञान नहीं होगा, धर्म का ज्ञान नहीं होगा तो रक्षक ही भक्षक बन जायेगा, पोषक ही शोषक बन जायेगा, चौकीदार ही चोर बन जायेगा... तो भोग-वासना भड़कानेवाला वातावरण बनता रहेगा।

आध्यात्मिक पहेलियाँ

(१)

हुए ब्रह्मनिष्ठ सतरहवें साल में, कहलाये महर्षि।
नजरों से निहाल करते रहे, ऐसी दृष्टि अमृतवर्षी॥
थे कौन ऐसे महापुरुष, जो थे सदा समदर्शी?

(२)

गलाडूब व्यवहार करते, न करते कभी छल-कपट।
शेर की तरह दहाड़कर, अत्याचारियों को लेते झपट॥
देखा नहीं कभी वक्रदृष्टि से, पर-नारी को जिनने।
छत्रपति कहलाकर महाराष्ट्र में राज्य किया था तिनने॥
समर्थ का आशीष पाया, किया समर्पित तन-मन-धन।
याद करता है आज भी, भारत के जन-जन का मन॥
था कौन ऐसा राजा, जिसने बजाया शत्रु का बाजा?

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

क्षमा बड़न को होत है...

एक महात्मा जंगल में कुटिया बनाकर एकांत में रहते थे। उनके अक्रोध, क्षमा, शांति, निर्मोहिता आदि गुणों की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। कुछ ऐसे भी लोग थे, जिनसे उन महात्मा का यश सहा नहीं जाता था। वे किस्म-किस्म के आरोप लगाकर, अफवाहें पैदा करके उस सत्पुरुष की सर्वहितकारी प्रवृत्ति में बाधा डाला करते थे।

कुछ भक्तों ने महात्मा से कहा : ''बाबा ! ऐसे निंदकों को आप खुलेआम जाहिर कर दो अथवा शापित कर दो या और कोई दण्ड दो ताकि ये निंदक भी समझें कि सत्पुरुषों की निंदा का क्या फल होता है।''

बाबा ने समता के सुमधुर वचन सुनाते हुए कहा : ''भगवान उन्हें सद्बुद्धि दें ताकि वे अपने को और अपने पूर्वजों को नारकीय योनियों में न भेजें। उनका मंगल हो। हमारे लिए अगर वे कुछ-का-कुछ बोलते हैं तो बदले में हम इतना ही कहेंगे :

**इलजाम लगानेवालों ने इलजाम लगाये लाख मगर।
तेरी सौगात समझकर हम सिर पर उठाये जाते हैं॥**

महात्मा की प्रसन्नता, निर्भीकता, समता और लोक-मांगल्य की उच्च दृष्टि से सत्संगियों की श्रद्धा व स्नेह में चार चाँद लग गये।

किंतु जो लोग महात्मा की ख्याति से जलते थे, ऐसे लोगों ने परस्पर निश्चय किया कि कैसे भी करके महात्मा को क्रुद्ध किया जाय। दो लोगों ने इसका बीड़ा उठाया और पहुँच गये महात्मा की कुटिया पर।

एक ने कहा : ''महाराज ! जरा गाँजे की चिलम तो लाइये ।''

महात्मा : ''भाई ! मैं गाँजा नहीं पीता ।''

''अच्छा, तो तम्बाकू लाइये ।''

''मैंने कभी तम्बाकू नहीं पिया ।''

''तब बाबा बनकर जंगल में क्यों बैठा है ? धूर्त कहीं का...''

इतने में पूर्वयोजना के अनुसार बहुत-से लोग वहाँ इकट्ठे हो गये । उस आदमी ने सबको सुनाते हुए कहा : ''यह बाबा पूरा ठग है । चार बार तो जेल की हवा खा चुका है ।''

तब दूसरे साथी ने कहा : ''अरे भाई ! मैं इसे खूब अच्छी तरह से जानता हूँ । मैं इसके साथ ही तो था ! जेल में इसने मुझको डण्डों से मारा था । यह देखो उनके निशान । रात को वेश्याओं के साथ रहता है और दिन में बड़ा संत बन जाता है ।''

इस प्रकार वे दोनों एक से बढ़कर एक झूठे आरोप उन महात्मा पर लगाने लगे ताकि उनको गुस्सा आ जाय । बोलते-बोलते जब उनका अपशब्दों का कोश खाली हो गया, वे थककर चुप हो गये तब महात्मा ने हँसकर कहा :

''एक भक्त ने यह शक्कर की पुड़िया दी है । इसे जरा पानी में डालकर पी लो भैया ! थक गये होंगे ।''

वे दोनों व्यक्ति महात्मा की यह सहनशीलता देखकर दंग रह गये । उनका हृदय पश्चात्ताप से भर उठा । दोनों साथी महात्मा के चरणों में गिर पड़े और बोले : ''महाराज ! हमें क्षमा कर दीजिये । हमने आपके प्रति बड़ा अपराध किया है । हम लोगों के द्वारा इतना-इतना कहे जाने पर भी आप क्रोधित नहीं हुए ।''

महात्मा : ''भैया ! जिसके पास जो माल होता है, वह उसीको दिखाता है । यह तो ग्राहक की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह उसे ले या न ले । तुम्हारे पास जो माल था, तुमने वही दिखाया । इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? परंतु मुझे तुम्हारा माल पसंद नहीं है, अतः मैं उसे नहीं लेता ।''

दोनों और लज्जित हो उठे । महात्मा ने पुनः कहा : ''गलती तो दूसरा आदमी करे और आग हम अपने भीतर जलायें, यह तो उचित नहीं है । मेरे गुरुदेव ने मुझे यही सिखाया है कि क्रोध करना और अपने बदन पर छुरी मारना बराबर है । ईर्ष्या करना और जहर पीना बराबर है । दूसरों की दी हुई गालियाँ और दुष्ट व्यवहार हमारा कुछ नुकसान नहीं कर सकते ।''

महात्मा के श्रीमुख से निःसृत पावन वाणी को सुनकर उन दुष्टों का हृदय बदल गया । वे कुपथ को त्यागकर सत्पथ पर चलने के लिए प्रेरित हो उठे ।

किसीने ठीक ही कहा है :

क्षमा बड़न को होत है, छोटन को उत्पात ।
विष्णु को क्या घटि गयो ? जो भृगु ने मारी लात ॥

*

बाबा की दाढ़ी अच्छी...

एक प्रसिद्ध महात्मा थे । लोगों की भीड़ बढ़ने लगी तो उन्होंने युक्ति खोज निकाली । उन्होंने एक गणिका से कहा : ''जब शाम को सत्संग हो तब तू भी आ जाना और नाचना-गाना शुरू कर देना । नाचते-नाचते नखरे करना और मुझे आँख मारना, मैं भी तुझे आँख मारूँगा । फिर जाते-जाते तू मेरी दाढ़ी को हिलाकर पूछना कि 'बाबा ! दाढ़ी अच्छी कि कुत्ते की पूँछ अच्छी ?' जरा इतना कर देना, मैं तुझे पैसे दूँगा ।''

गणिका : ''बाबा ! मुझे पाप लगेगा ।''

बाबा : ''अरे, मैं बोलता हूँ तो पाप काहे का लगेगा ? तुझे तेरी फीस मिल जायेगी फिर क्यों है ?''

गणिका ने सोचा कि मुझे इतना करने से ही पैसे मिल रहे हैं तो क्या हर्ज है ? उसने बाबा के कहे अनुसार करना शुरू कर दिया ।

प्रतिदिन शाम को वह आने लगी । थोड़ी देर तक नाच-गान करने के बाद वह बाबा को आँख मारती, बाबा उसे आँख मारते । फिर जाते-जाते वह पूछ लेती कि 'बाबा ! दाढ़ी अच्छी कि कुत्ते की पूँछ अच्छी ?'

थोड़े दिनों के बाद लोगों को लगने लगा कि बाबा की बुद्धि पलट गयी है। वे आपस में कानाफूसी करने लगे कि 'ऐसा कोई साधु होता है ? चलो, चलो।' धीरे-धीरे करके सबने आना बंद कर दिया।

महाराज को तो दो टिक्कड़ खाने थे और उनके पास कोई कमी भी न थी। वे आराम से ध्यान-भजन करते रहे।

जब उनका शरीर छोड़ने का समय आया, तब उन्होंने कहलवा भेजा कि 'भाई ! जिन सत्संगियों को आना हो, वे आ जायें।'

कुछ लोगों ने कहा : ''अब कौन आये तुम्हारे पास ? हम समय क्यों खराब करें ?''

फिर भी कुछ लोग, जो पक्के-पक्के थे, आये कि संत की लीला संत जानें ! वह वेश्या भी आयी। बाबाजी लेट गये। आँख मारते-मारते वेश्या ने बाबा की दाढ़ी हिलाते हुए पूछा : ''बाबा ! दाढ़ी अच्छी कि कुत्ते की पूँछ अच्छी ?''

बाबा : ''बेटी ! दाढ़ी अच्छी है। हम ईश्वर से निभाकर जा रहे हैं।''

बाबा ने सदा के लिए आँखे बंद कर लीं।

लोग सिर पीटने लगे कि 'अरे, बाहर से बाबा मैले-कुचैले दिखते थे, विषयी जैसे दिखते थे। लेकिन वेश्या को बेटी बोलने का सामर्थ्य था उनके पास... इतने निर्लेप थे, निःसंग थे ! हम उन्हें नहीं पहचान पाये...'

यही है दुनिया का हाल ! जब तक ब्रह्मवेत्ता महापुरुष विद्यमान रहते हैं, तब तक उन्हें पहचान नहीं पाते और उनकी कृपा से जब थोड़ा-थोड़ा पहचानने लगते हैं, तब तक समय बीत चुका होता है...

*

ब्रह्मचारी के अपमान का परिणाम

सन् १९४२ के आस-पास की बात है। किसी जंगल में एक संत का आश्रम था। संत ने अपने शिष्य को आज्ञा दी कि 'जा, बेटा ! गाँव में जाकर सामान ले आ और बाल बढ़ गये हैं, उन्हें भी बनवा लेना।'

शिष्य गया। मुण्डन करवाकर सामान लिये वह लौट रहा था। वह जिस नाव में बैठा उस नाव में कुछ अंग्रेज लड़के भी बैठे थे। उसका मुण्डित मस्तक देखकर उन लड़कों ने मखौल उड़ाना शुरू कर दिया : 'वाह-रे-वाह ! टाल क्या चमक रही है ?'

वह तो बेचारा सीधा-सादा था, चुप बैठा रहा। इससे उन लड़कों को मखौल उड़ाने का और मौका मिल गया। लड़कों ने कहा : 'यह तो पक्का नारियल है। देखें, कैसा बजता है ?'

वह अकेला और उधर लड़कों की टोली ! बेचारे के सिर पर टकोरें मारी जा रही थीं और लड़के उसका मखौल उड़ाते जा रहे थे...

उनमें से जो सबसे ज्यादा दुष्ट था, जिसने टाल पर टकोरें मारी थीं उस पर प्रकृति कोपायमान हो गयी। नाव जब किनारे लगी तो उसके हाथ में जो छड़ी थी, उसीको टेककर उसने उतरना चाहा किंतु उसका नुकीला भाग उसके गले में जा घुसा और वह लड़का वहीं छटपटाकर मर गया।

ब्रह्मचारी लड़का उदास होता हुआ आश्रम में आया। गुरुजी ने पूछा : ''उदास क्यों है ?''

उसने सारी घटना बताते हुए कहा : ''गुरुजी ! जिस लड़के ने मेरी टाल पर टकोरें मारी थीं, उसे मैंने तो शाप नहीं दिया, किंतु वह मेरे सामने ही नाव से उतरते ही तड़प-तड़पकर मर गया। इसलिए मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।''

गुरुजी ने डाँटते हुए कहा : ''जब तू निर्दोष था और वे तेरा मजाक उड़ा रहे थे तो तू पीता क्यों गया ? तू उनको थोड़ा-सा भी बोल देता तो उनका पाप इतना नहीं रहता। तू कुछ नहीं बोला और उनका पाप बढ़ता गया तो कुदरत को उसका फल अनन्त करके देना पड़ा। जिसका परिणाम उसे तुरंत ही मिल गया। इसीलिए उसकी अकाल मृत्यु हो गयी।''

संत सताये तीनों जाय, तेज बल और वंश।
ऐडा ऐडा कई गया, रावण कौरव केरो कंस ॥

रावण के कुल में, कौरवों के कुल में देखो तो कोई रोनेवाला भी नहीं बचा...

संतों के साथ विपरीत व्यवहार करने से प्रकृति

कोपायमान होती है, परंतु उनकी सेवा से प्रसन्न भी तो होती है। फिर क्यों न भगवत्प्राप्त संतों के दैवी कार्य में जुड़कर उनकी सेवा करके अपना भाग्य बना लें ?

आपको जिसका बेड़ा गरक करना हो, उसको संतों के दैवी कार्य में विघ्न डालना सिखा दो, संतों की निन्दा करना सिखा दो। वह तो तबाह होगा ही उसकी सात पीढ़ियाँ भी तबाह हो जायेंगी और जिसका कल्याण करना हो, उसको संतों के दैवी कार्य में भागीदार बना दो, संतों के प्रति उसकी श्रद्धा जगा दो तो देर-सवेर उसका तो बेड़ा पार होगा ही, उसकी २१ पीढ़ियों का भी उद्धार हो जायेगा...

भले शुरूआत में छूमंतर की नाईं न दिखे लेकिन पुण्य का फल मिलता ही है। 'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में वशिष्ठजी महाराज कहते हैं कि 'हे रामजी ! जो शमवान हैं, ज्ञानवान हैं उनकी भली प्रकार सेवा करनी चाहिए। उनका बड़ा उपकार है। हजारों जन्मों के पिता जो न दे सके, हजारों जन्मों की माताएँ जो आत्मज्ञान न दे सकीं, वह आत्मज्ञान देकर इसी जन्म में संसार-सागर से पार करनेवाले मल्लाह हैं वे ज्ञानवान महापुरुष !'

✲ जो मनुष्य पुण्यकर्म करते हैं, वे सुख भोगकर आयुष्य का नाश करते हैं और जो मनुष्य पापकर्म करते हैं, वे दुःख भोगकर आयुष्य का नाश करते हैं। बुद्धिमान तो वह है जो पाप से बचता है और पुण्य का फल ईश्वर को अर्पित करके ईश्वर को पाता है।

✲ जो मन का रुख परमात्मा से मोड़कर संसार के भोग की तरफ ले जाते हैं, वस्तु-व्यक्ति से सुख लेने की तरफ ले जाते हैं, पाप की तरफ ले जाते हैं वे देर-सवेर पाप-ताप में तपते रहते हैं और जो प्रभु के ज्ञान-ध्यान में ले जाते हैं, वे देर-सवेर प्रभुमय हो जाते हैं। संसार की वस्तु संसार के काम आये और अपना अंतरात्मा परमेश्वर अपने पर संतुष्ट रहे - ऐसा यत्न करना चाहिए। - संत श्री आसारामजी बापू

आज्ञा सम नहीं साहेब सेवा...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

कुछ वर्ष पहले पंजाब का एक युवान साधक अपना सर्वस्व त्यागकर, आत्मदेव के दर्शन करा सकें - ऐसे सद्गुरु की खोज में निकला।

जिन्हें हो प्यास दर्शन की, वे खुशनसीब होते हैं।
चल पड़ें दो कदम तो, रब उनके करीब होते हैं॥

अध्यात्म का मार्ग ही ऐसा है कि उस पर ईश्वर या सद्गुरु की खोज में सच्चे दिल से चल पड़ो तो वह अत्यंत सुलभ बन जाता है। एक दिन उस युवान को भी ब्रह्मानंद की मस्ती में रमण करनेवाले कोई तत्त्ववेत्ता महापुरुष सद्गुरुरूप में मिल गये। उस युवान ने पूर्ण शरणागति और श्रद्धा-भक्तिभाव से उनके पावन श्रीचरणों में प्रणाम किया।

उन महापुरुष ने उस युवान से पूछा : ''तुम्हें परमात्मा को जानना है या परमात्मा के विषय में जानना है ?''

वह साधक खूब समझदार रहा होगा। उसने कहा : ''मुझे परमात्मा को जानना है, परमात्मा के विषय में नहीं जानना है।''

सद्गुरु ने प्रसन्न होते हुए कहा : ''यदि तुमको परमात्मा के विषय में जानना होता तो कई शास्त्र और ग्रंथ तुम्हें थमा देता, जिनमें परमात्मविषयक बहुत सारा वर्णन किया गया है, परंतु तुम्हें परमात्मा को जानना है तो मेरे आश्रम में रहना पड़ेगा।''

साधक ने इसे अपना अहोभाग्य माना और आश्रम में रहने लगा। उसने पूछा : ''गुरुदेव ! मेरे लिए सेवा या साधना की आज्ञा करें।''

गुरुदेव : ''देख, इस आश्रम में ५०० शिष्य

हैं। उनके भोजन-प्रसाद में चावल का ही उपयोग होता है। सामने जो कमरा है, उसमें धान के बोरे पड़े हैं। वहाँ जाकर धान कूटने लग। यही तेरी साधना है।''

शिष्य ने न कोई प्रश्न किया न कोई दलील की क्योंकि वह जानता था कि

आज्ञा सम नहीं साहेब सेवा।

उसने न कोई मंत्र लिया, न कोई उपदेश लिया। बस, गुरु-आज्ञा ही उसका मंत्र था - **मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं...** और वही उपदेश था। सुबह से शाम तक धान कूटता रहता और रात को उसी कमरे में सो जाता। न किसीके साथ पहचान, न किसीके साथ वार्तालाप। वह तो सतत मौन रहकर सेवा-साधना में ही लगा रहा। इस प्रकार १२ वर्ष बीत गये। आजकल का शिष्य होता तो १२ दिन में ही भाग जाता, परंतु ऐसे निष्ठावान शिष्य की स्मृति तो गुरुदेव को भी आ जाती है।

बड़े वे भाग्यशाली हैं,
जिन्हें गुरु याद करते हैं।
नहीं कम भाग्यशाली वे,
जो गुरु से प्यार करते हैं॥

गुरुदेव को ऐसे शिष्य की निष्ठा से प्रसन्नता होती है कि 'आज मुझे पक्का शिष्य मिल गया।'

कहते हैं कि परमात्मप्राप्ति इतनी कठिन नहीं है, जितनी सच्चे सद्गुरुओं की प्राप्ति और सद्गुरुओं की प्राप्ति भी इतनी कठिन नहीं है, जितनी सच्चे शिष्यों की प्राप्ति। आजकल के शिष्यों में शिष्यत्व है ही कहाँ ?

...परंतु आज उन महापुरुष को उनके ज्ञान को पूर्णरूप से पचानेवाला सत्शिष्य मिल गया था। गुरुदेव का निर्वाण दिन नजदीक आ रहा था। सब शिष्यों को गुरुदेव ने अपने पास बुलाया और कहा :

''अब मैं निर्वाण को प्राप्त होनेवाला हूँ। वर्षों से तुम लोगों ने दीक्षा और मेरे उपदेश पाये हैं। अब मैं अपने इस आश्रम की गद्दी का अधिकारी चुनने के लिए एक शर्त रखता हूँ। उस शर्त में जो सफल होगा, वही इस आश्रम का उत्तराधिकारी बनेगा।''

सब शिष्य बोले उठे : ''गुरुदेव ! क्या शर्त है ? कहिये।''

गुरुदेव ने कहा : ''मैं तुम्हें वर्षों से सत्संग, ज्ञानादि देता आया हूँ। उसका सारांश कम-से-कम शब्दों में लिखकर लाना है। जिसका सारांश सर्वोपरि होगा, वही इस आश्रम का उत्तराधिकारी माना जायेगा।'' इतना कहकर गुरुदेव अन्दर चले गये।

सब शिष्य सोचने लगे कि 'इतने बड़े आश्रम की गद्दी मिलनेवाली है !' सबका मन गद्दीपति होने के लिए लालायित था, परंतु अन्दर से डर भी था कि कहीं उपदेश का सारांश लिखने में त्रुटि रह गयी तो ? उन लोगों ने सारी रात सोचने में बितायी और अंत में एक तख्ती पर लिख दिया : ''मन एक दर्पण है। इस मनरूपी दर्पण पर काम, क्रोध, लोभ आदि की धूल जम गयी है। उस धूल को साफ करना यही निर्वाण है।''

इतना लिखकर तख्ती रख दी। वे बहुत चालाक थे, अतः लेख के नीचे किसीने अपने हस्ताक्षर नहीं किये क्योंकि सोचा कि 'गुरुदेव को ठीक लगेगा तो आगे कूद पड़ेंगे और गलत लगेगा तो कहेंगे कि हम तो अभी विचार कर रहे हैं। पता नहीं यह किसने लिखा होगा ?' सब पढ़े-लिखे जो थे !

सुबह जब गुरुदेव ने पढ़ा तो बोल उठे :

''मेरी शिक्षा-सत्संग का अनर्थ करके किस अज्ञानी ने यह सार निकाला है ? इस तख्ती को यहाँ से दूर करो।''

सब शिष्य चिंतित होकर इकट्ठे हुए। वे सोचने लगे कि 'अब क्या करें ? क्या लिखें जो गुरुदेव को ठीक लगे ?' परंतु उन्हें कोई रास्ता नहीं मिला। अंत में वे शिष्य धान कूटनेवाले उस पंजाबी युवक शिष्य के कमरे में गये। तब उस सत्शिष्य ने १२ वर्ष का मौन तोड़कर पूछा :

''आज सुबह के प्रहर में इतना कोलाहल क्यों था, भाई ?''

सारांश लिखनेवाले शिष्यों ने सारी हकीकत कह सुनायी। तब धान कूटनेवाले उस सत्शिष्य ने कहा : ''आप लोगों ने शिक्षा व सत्संग का जो

सारांश लिखा वह गुरुदेव को नहीं भाया तो अब मैं जो कहूँ, वह लिख दो।''

''क्या लिखें ? बताओ।''

उसने कहा : ''मन ही नहीं है तो धूल किस पर ? किसकी सफाई और किसका निर्वाण ?''

दूसरे दिन गुरुदेव यह पढ़कर गद्गद हो गये और पहली बार उस सत्शिष्य को बुलाकर आलिंगन किया।

गुरुदेव बोले : ''बेटा ! मेरी आज्ञा मानकर तू सेवा में इतना तल्लीन हो गया कि तेरा मन ही नहीं बचा है। तेरा मन अमनीभाव में स्थित हो गया है। बेटा ! तू गुरुतत्त्व झेलने के लिए पूर्ण अधिकारी है।''

सद्गुरु ने आज तक जो भी अनुभव प्राप्त किये थे, वे सब उन्होंने अपनी शक्तिपात-वर्षा के माध्यम से सत्शिष्य पर बरसा दिये। साधक में से वह सिद्ध हो गया। शिष्य में से वह पूर्ण गुरुत्व में प्रतिष्ठित हो गया।

पूर्ण गुरु कृपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान।
साधक में से बन गया, अब वह सिद्ध महान॥
देह सभी मिथ्या हुई, जगत हुआ निःसार।
हुआ आत्मा से तभी, उसका साक्षात्कार॥

वे घड़ियाँ धन्य हैं, जब आत्ममस्ती में जागे हुए कोई सद्गुरु अपने प्रिय शिष्य पर शक्तिपात की वर्षा करते हैं और उसे अपने अनुभव में मिला देते हैं। गुरुदेव ने उसे आत्मसाक्षात्कार का प्रसाद देते हुए कहा :

''अब तुझे इस आश्रम में नहीं रहना है। तू आज से मुक्त हो गया है। यह ले मेरा डण्डा और यहाँ से अभी निकल पड़, क्योंकि मेरे निर्वाण के पश्चात् तेरी उन्नति को अन्य ५०० शिष्य सहन नहीं कर पायेंगे। इसलिए तू अभी चला जा।''

वह सत्शिष्य सजल नेत्रों से सद्गुरु के पावन श्रीचरणों में प्रणाम करके चला गया और कुछ समय के बाद गुरुदेव भी निर्वाण को प्राप्त हो गये।

धन्य है ऐसे गुरुभक्तों का जीवन जो श्रद्धा, भक्ति और तत्परता से गुरु-आज्ञा का पालन करते हुए उनकी पूर्ण कृपा पाने के अधिकारी बन जाते हैं !

दीनता और अभिमान

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

जीवन में दीनता और अभिमान - इन दो भावों से सावधान रहें तो जीवन आनंदमय बन जाय।

ये दोनों ही हमें नीचे ले आते हैं। अपने में से कोई धन, पद-प्रतिष्ठा अथवा विद्वत्ता में आगे हो तो उसे देखकर हममें दीनता का भाव आ जाता है और अपने से छोटे को देखकर हममें अभिमान का भाव आ जाता है।

किंतु भगवान और भगवान को पाये हुए महापुरुषों के समक्ष जो दीनता प्रकट होती है, वह संसारी लोगों की दीनता जैसी नहीं होती। वह दीनता नहीं श्रद्धा है, अहोभाव है, समर्पण है। प्रेमी के हृदय की पुकार है... भगवत्प्राप्त महापुरुषों के समक्ष जो दीनता प्रकट करते हैं, वह संसार की दीनता से छुड़ानेवाली है।

संसार की वस्तुओं के लिए जो दीनता का अनुभव करते हैं और संसारी वस्तुओं को पाकर जो अभिमान आता है, वह दीनता व अभिमान अपने को देह मानने से होता है। देह के अभिमान से अंतःकरण मलिन होता है।

कोई बड़े-से-बड़ा राष्ट्रपति है, वह मैं ही चैतन्य हूँ और कोई छोटे-से-छोटा चपरासी है, वह भी मेरा ही स्वरूप है। इस प्रकार अपने को ज्ञानस्वरूप मानने से दीनता और अभिमान का प्रभाव क्षीण होने लगेगा।

जब-जब कोई अपने से आगे दिखे और अपने में दीनता का अनुभव हो, तब उसे तुरंत आत्मभाव से निहारो। इसी प्रकार जब-जब अभिमान आये,

तब-तब आत्मज्ञान के उजाले में जियो । अभिमान विदीर्ण हो जायेगा ।

दीनता और अभिमान को पिघलाने के लिए किसी गिरी-गुफा में जाकर बैठने की जरूरत नहीं है, चालू व्यवहार में ही सावधान रहने की जरूरत है ।

जब भी दीनता या अभिमान आये, तब सावधान रहें कि स्वयं को देह और सामनेवाले को अपने से अलग मानने के कारण ही यह दोष आया है । इस दीनता और अभिमान को नष्ट करने में ही जीवन की सफलता है, जीवन का सदुपयोग है ।

दीनता को त्याग नर, अपना स्वरूप देख ।
तू तो शुद्ध ब्रह्म अज, दृश्य को प्रकाशी है ॥

जो-जो तुम्हें दिखता है, उन सबको प्रकाशित करनेवाले तुम्हीं साक्षी चैतन्य आत्मा हो । यह दृश्य-प्रपंच मिथ्या है, दिखावामात्र है । इस जगत का दृश्य निरंतर बदलता रहता है, प्रतिक्षण स्वप्न में परिणत होता रहता है - ऐसा जान लो तो दीनता और अभिमान को मिटाने में सफल हो जाओगे ।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनोयाति तत्र तत्र समाधयः ॥

'परमात्मा को भलीभाँति जानकर जिसका देहाध्यास गल गया है अर्थात् नष्ट हो गया है, उसका मन जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ उसे समाधि है ।' फिर दीनता भी नहीं रहती, अभिमान भी नहीं रहता, केवल शांति-ही-शांति रहती है ।

प्रयत्न करो, प्रयत्न करो, सफलता जरूर मिलेगी ।

निराशावादी कहता है हर दिन के पीछे काली रात लगी है । क्या जिन्दगी है ? जिन्दगी में कोई सार नहीं है । आशावादी कहता है हर काली रात के बाद सुन्दर, सुहावनी सुबह होती है । बात वही-की-वही है लेकिन आशावादी की आशा सुन्दर होती है तो उसका जीवन भी सुन्दर हो जाता है । निराशावादी हताश-निराश होकर जीवन को यूँ ही गँवा देता है ।

- परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

मानव को महेश्वर बनाने की क्षमता है गीता के ज्ञान में

(गीता जयंती : १५ दिसम्बर २००२)

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

हरि सम जग कछु वस्तु नहीं, प्रेम पंथ सम पंथ ।
सद्गुरु सम सज्जन नहीं, गीता सम नहिं ग्रंथ ॥

सम्पूर्ण विश्व में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं जिसकी श्रीमद्भगवद्गीता के समान जयंती मनायी जाती हो । मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष की एकादशी को कुरुक्षेत्र के मैदान में रणभेरियों के बीच योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर मनुष्यमात्र को गीता के द्वारा परम सुख-परम शांति प्राप्त करने का मार्ग दिखाया । गीता का ज्ञान जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति देनेवाला है । गीता जयंती 'मोक्षदा एकादशी' के रूप में भी मनायी जाती है ।

इस छोटे-से ग्रंथ में जीवन की गहराइयों में छिपे हुए रत्नों को पाने की ऐसी कला है जिसे प्राप्त कर मनुष्य की हताशा-निराशा एवं दुख-चिंताएँ मिट जाती हैं । गीता का अद्भुत ज्ञान मानव में से महेश्वर को प्रकट करने की क्षमता रखता है ।

गीता भगवान के अनुभव की पोथी है । वह भगवान का हृदय है । उपनिषदरूपी गाय का दोहन करनेवाले गोपाल ने अर्जुनरूपी बछड़े को निमित्त बनाकर समस्त संसार को शाश्वत सुख, आनंद एवं अमरता प्राप्त करने की कुंजी दी है ।

गीता के ज्ञान से विमुख होने के कारण ही आज का मानव दुःखी एवं अशांत है । दुःख एवं शोक से व्याकुल व्यक्ति भी गीता के दिव्य ज्ञान का अमृत

पीकर शांतिमय, आनंदमय जीवन जी सकता है।

ज्ञानप्राप्ति की परम्परा तो यह है कि जिज्ञासु किसी शांत-एकान्त व धार्मिक स्थान में जाकर रहे परंतु गीता ने तो गजब कर दिया... युद्ध के मैदान में अर्जुन को ज्ञान की प्राप्ति करा दी।

एकान्त अरण्य की गुफा में धारणा, ध्यान, समाधि करने पर योग प्रकट होता है, परंतु गीता ने युद्ध के मैदान में योग प्रकट कर दिया ! भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के माध्यम से अरण्य की विद्या को रणभूमि में प्रकट कर दिया ! उनकी कितनी करुणा है !

आज के चिंताग्रस्त अशांत मानव को गीता के ज्ञान की अत्यंत आवश्यकता है । 'पाश्चात्य कल्चर' से प्रभावित होकर पतन की खाई में गिर रहे समाज को गीता का ज्ञान सही दिशा दिखाता है। उसे मनुष्य-जन्म के परम लक्ष्य ईश्वरप्राप्ति, जीते-जी ईश्वरीय शांति एवं अलौकिक आनंद की प्राप्ति तक सहजता से पहुँचा सकता है । अतः मानवता का कल्याण चाहनेवाली पवित्रात्माओं को गीता का ज्ञान घर-घर तक पहुँचाने में लग जाना चाहिए।

वेदों की दुर्लभ एवं अथाह ज्ञानराशि को सर्वसुलभ बनाकर अपने में संजोनेवाला गीताग्रंथ बड़ा अद्भुत है । मनुष्य के पास तीन ईश्वरीय शक्तियाँ मुख्य रूप से होती हैं। पहली करने की शक्ति, दूसरी मानने की तथा तीसरी जानने की शक्ति। अलग-अलग मनुष्यों में इन शक्तियों का प्रभाव भी अलग-अलग होता है। किसीके पास कर्म करने का उत्साह है, किसीके हृदय में भावों की प्रधानता है तो किसीको कुछ जानने की जिज्ञासा अधिक है । जब ऐसे तीनों प्रकार के व्यक्ति मनुष्य-जन्म के वास्तविक लक्ष्य ईश्वरप्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं तो उन्हें उनके व्यक्तित्व के अनुकूल साधना की आवश्यकता पड़ती है। श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा अद्भुत ग्रंथ है जिसमें कर्म, भक्ति एवं ज्ञान तीनों साधनाओं का समावेश है । इसलिए गीताग्रंथ मानवमात्र के लिए उपयोगी है।

गीता हर प्रकार के साधक का मार्गदर्शन करने में सक्षम है । अलग-अलग मार्ग की साधना करनेवाले विभिन्न महापुरुषों द्वारा गीता पर लिखी गयी टीकाएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

लोकमान्य तिलक एवं गाँधीजी ने गीता से कर्मयोग की उपासना को लिया, रामानुजाचार्य एवं माध्वाचार्य आदि ने इसमें भक्तिरस को देखा तथा श्री उड़ियाबाबा जैसे श्रोत्रिय ब्रह्मवेत्ताओं ने इसके ज्ञान का प्रकाश फैलाया। संत ज्ञानेश्वर महाराज एवं योगी श्री अरविंद ने गीता में सभी मार्गों की पूर्णता को देखा।

गीतारूपी सागर से करने की, मानने की और जानने की शक्ति अर्थात् कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के रूप में प्रत्येक साधक को अपने मनोवांछित रत्न प्राप्त हुए।

गीता किसी मत-मजहब को चलानेवाले के द्वारा नहीं कही गयी है, अपितु जहाँ से सारे मत-मजहब उपजते हैं और जिसमें लीन हो जाते हैं उस आदिसत्ता ने मानवमात्र के कल्याण के लिए गीता सुनायी है। गीता के किसी भी श्लोक में किसी भी मत-मजहब की निन्दा-स्तुति नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञानामृत के पान से मनुष्य के जीवन में साहस, समता, सरलता, स्नेह, शांति और धर्म आदि दैवी गुण सहज ही विकसित हो उठते हैं। अधर्म, अन्याय एवं शोषण का मुकाबला करने का सामर्थ्य आ जाता है । भोग एवं मोक्ष दोनों ही प्रदान करनेवाला, निर्भयता आदि दैवी गुणों को विकसित करनेवाला यह गीताग्रंथ पूरे विश्व में अद्वितीय है ।

गीता की जरूरत केवल अर्जुन को ही थी ऐसी बात नहीं है। हम सब भी युद्ध के मैदान में ही हैं। अर्जुन ने तो थोड़े ही दिन युद्ध किया, किंतु हमारा तो सारा जीवन काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, मेरा-तेरारूपी युद्ध के बीच ही है। अतः अर्जुन को जितनी गीता की जरूरत थी उतनी, शायद उससे भी ज्यादा आज के मानव को उसकी जरूरत है। यह मानवमात्र का ग्रंथ है।

*

गीताग्रंथ विश्व में अद्वितीय है

✻ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ✻

जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए गीताग्रंथ अद्भुत है। विश्व की ५७८ भाषाओं में गीता का अनुवाद हो चुका है। हर भाषा में कई चिंतकों, विद्वानों एवं भक्तों ने मीमांसाएँ की हैं और अभी भी हो रही हैं, होती रहेंगी क्योंकि इस ग्रंथ में किसी भी देश, जाति, पंथ के सभी मनुष्यों के कल्याण की अलौकिक सामग्री भरी हुई है। अतः हम सबको गीताज्ञान में अवगाहन करना चाहिए। भोग, मोक्ष, निर्लेपता, निर्भयता आदि तमाम दिव्य गुणों का विकास करानेवाला यह गीताग्रंथ विश्व में अद्वितीय है।

✻

आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति का महाद्वार श्रीमद्भगवद्गीता

✻ महर्षि अरविंद ✻

गीता में जो सत्य है, जो मर्मस्पर्शी विचार इस ग्रंथ में पिरोये गये हैं उनका महत्त्व चिरंतन है। उनका मूल्य सदा बना रहेगा क्योंकि यह केवल दार्शनिक बुद्धि की कल्पनापूर्ण चमक या चकित करनेवाली युक्ति नहीं है, अपितु आध्यात्मिक अनुभव का चिरस्थायी सत्य है। जो आध्यात्मिक जगत के रहस्य की तह तक पहुँचना चाहता है वह इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

गीता वह महाद्वार है जिससे समस्त आध्यात्मिक सत्य और अनुभूति के जगत की झाँकी मिलती है और इस झाँकी में उस परम दिव्य धाम के सभी ठाम यथास्थान दिखायी पड़ते हैं।

गीता ने प्रेम, ज्ञान और कर्म इन तीन महान साधनों और शक्तियों का समन्वय किया है। गीता का प्रतिपादन तीन सोपानों में बँटा है। पहले सोपान में मनुष्य कामना का त्याग कर पूर्ण समता के साथ यज्ञरूप से शास्त्रीय कर्म करेगा। यह यज्ञ उन भगवान के लिए है जो परम एवं सबके आत्मा हैं। दूसरे सोपान में केवल फलेच्छा का त्याग नहीं, अपितु कर्ताभाव का भी त्याग और यह अनुभव करना कि आत्मा सम और अकर्ता है। सब कर्म प्रकृति के हैं। अंतिम सोपान है परम पुरुष आत्मा को जान लेना।

प्रथम सोपान है कर्मयोग अर्थात् भगवत्प्रीति के लिए निष्काम कर्मयज्ञ। गीता जिस कर्म का प्रतिपादन करती है, वह दिव्य कर्म है। यहाँ पर गीता नीतिशास्त्र या आचारशास्त्र नहीं अपितु आध्यात्मिक जीवन-पथप्रदर्शक ग्रंथ है।

दूसरा सोपान है भक्ति या प्रेम। सत्कर्मों को ईश्वरार्पण करने से भक्ति की उत्पत्ति होगी। कर्मों का यज्ञ तो यहाँ भी जारी रहेगा परंतु कर्म की स्थिति बदल जायेगी। पूर्ण समर्पण आ जायेगा। तीसरा सोपान है ज्ञानयोग अर्थात् आत्म-उपलब्धि, आत्मा एवं जगत के वास्तविक स्वरूप का अनुभव।

गीता कहती है कि भगवान में रहो। गीता का उपदेश है आत्मा में निवास करो, सनातन में निवास करो।

गीता का प्रयोजन है परम सत्य की खोज... और हमारे वर्तमान अपूर्ण मर्त्य जीवन को पूर्णता की ओर ले जाना।

गीता एक ऐसा ग्रंथ है जो दीर्घकाल से जीवित चला आ रहा है और यह आज भी उतना ही ताजा तथा अपने सार तत्त्व में उतना ही नया है जितना यह तब (महाभारतकाल में) था।

✻

वेद का सार है गीता

✻ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री अखण्डानंदजी सरस्वती ✻

श्रीमद्भगवद्गीता अर्थात् जो श्रीमान्-श्रीपति भगवान द्वारा गायी हुई है। गीता गीत है और इसे गानेवाला... कहते हैं न, कि ये अमुक घराने के संगीतज्ञ हैं, बहुत अच्छा गाते हैं। तो भगवद्गीतारूपी गीत को गानेवाले हैं बाँसुरीवाले मनमोहन, गोपीजनवल्लभ, श्यामसुन्दर। जो विषाद के अवसर पर भी एक दिव्य संगीत गाते हैं।

जहाँ दोनों ओर से युद्ध के शंख बज रहे हैं और उस युद्ध के मैदान में यह मधुर गीत प्रकट हुआ है।

गीताशास्त्रमिदं पुण्यम् । गीता पवित्र शास्त्र है। यह शास्त्र किसका है ? यह भगवान का शास्त्र है। भगवान ही इसके वक्ता भी हैं और भगवान ही इसके विषय भी हैं । इसका निवास भगवान का हृदय है।

'गीता मे हृदयं पार्थ ।'

विश्व में गीता के जोड़ का ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है, जिसको भगवान ने अपना हृदय बताया हो । इसका कारण यही है कि वह स्वयं उनके श्रीमुख से निकली है।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता ।

इसमें जो 'स्वयं' शब्द है उस पर आप ध्यान दीजिये । इसका अर्थ है कि जब भगवान का मुख खुला तब गीता स्वयं उनके हृदय से छलककर बाहर आयी । भगवान ने यह नहीं कहा : 'गीता ! तुम मेरे हृदय में से बाहर निकलो । तुम प्रकाशित (प्रकट) हो जाओ ।' जैसे सरोवर भरने पर छलकने लगता है, वैसे ही गीता भगवान के हृदय से छलककर बाहर आ गयी अर्थात् गीता का ज्ञान भगवान श्रीकृष्ण द्वारा निर्मित नहीं है। यह अनादि है, अपौरुषेय है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता की रचना नहीं कि अपितु इसे गाया है।

देखो, पद्मनाभ भगवान के नाभिकमल से निकले ब्रह्माजी और ब्रह्माजी के मुख से निकला वेद अर्थात् नाभि का बेटा कमल, कमल का बेटा ब्रह्माजी और ब्रह्माजी का बेटा वेद । किंतु गीता ब्रह्माजी के मुख से नहीं, कमल से नहीं, नाभि से नहीं अपितु जिनके नाभिकमल से ब्रह्माजी निकले हैं, उनके मुखपद्म से निकली है । इसलिए यह वेद का सार है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य १२२वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया दिसम्बर २००२ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

भक्त भद्रतनु

(गतांक का शेष)

इस पर दान्त मुनि ने परम प्रसन्न होकर विवरण कहना आरम्भ किया । दान्त मुनि बोले :

१. वेद-शास्त्र-सम्मत कर्म का परित्याग कर दूसरा कर्म करनेवाला और अपने आचार को छोड़नेवाला पाखण्डी है एवं वेद-शास्त्र-सम्मत कर्म करनेवाला, अपने आचारों का पालन करनेवाला और पाप की इच्छा न रखनेवाला मनुष्य सज्जन है।

२. कामिनी, कंचन आदि विषयों के संग्रह की इच्छा को काम कहते हैं । अपनी निन्दा सुनकर या मन के प्रतिकूल कार्य होने पर जो हृदय में जलन होती है, उसको क्रोध कहते हैं। क्रोध सारे धर्मों का नाश करनेवाला है। दूसरे के धन आदि को देखकर उसे पाने की इच्छा होती है, उसका नाम लोभ है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी स्त्री, मेरा पति, मेरा घर-इस प्रकार की ममता का नाम मोह है । मैं महात्मा हूँ, धनवान हूँ, मेरे समान पृथ्वी पर कौन है, हृदय के इस प्रकार के भाव को मद कहते हैं। लोग सदा मेरी निन्दा करते हैं, इसीलिए मेरे जीवन को धिक्कार है, मन के ऐसे भाव को तथा मुझसे दूसरे अधिक धनवान व श्रेष्ठ क्यों हैं, मैं ही सबसे अधिक धनी व श्रेष्ठ क्यों न होऊँ - ऐसे भाव को मत्सर कहते हैं। सब लोगों को सुख पहुँचानेवाले हितकर और यथार्थ वचन का नाम सत्य है, जो इसके विपरीत है, वही असत्य है और दूसरे के ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र, शरीर, धन आदि के नाश की चिंता का नाम हिंसा है। इन सबका त्याग करना चाहिए।

३. दूसरों के कष्टों को यत्नपूर्वक दूर करने की इच्छा को दया कहते हैं। स्वल्प या जो कुछ भी मिल

जाय, उसीमें संतुष्ट रहने का नाम शांति है। कुत्सित कार्यों से चित्त हटाने का नाम दम है, सुख-दुःख तथा मित्र-शत्रु आदि में समभाव ही समदृष्टि है और भगवान का आश्रय लेकर नैवेद्य, गन्ध-धूपादि द्वारा परम श्रद्धा के साथ श्रीहरि की पूजा करना हरि का नाम जपना व ध्यान धरना ही आराधना है।

४. मध्याह्न और रात्रि के भोजन का त्याग अहोरात्रव्रत है तथा भगवान के साथ अपना एकीकरण करना ही विष्णुस्मरण है।

५. ब्रह्मयज्ञ, नरयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ और भूतयज्ञ - ये पंचमहायज्ञ हैं।

६. **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** यही द्वादशाक्षर-मंत्र है। इसके बाद दान्त मुनि ने भगवान के दुर्लभ चतुर्वर्ग-फलप्रद एक सौ आठ नाम बतलाकर भद्रतनु से कहा : 'तुमको मैंने सब साधन बतला दिये हैं। मेरी बतलायी हुई विधि के अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान की आराधना करने पर तुम अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करोगे। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो!'

भद्रतनु एकान्त स्थान में जाकर, मन लगाकर, दान्त मुनि की बतलायी हुई विधि के अनुसार, अनन्यचित्त हो भगवान की उपासना करने लगा। भगवान ने 'गीता' में कहा है कि यदि महापापी भी सम्यक् निश्चयपूर्वक अनन्यभाव से मुझको भजता है तो वह साधु ही है और बहुत शीघ्र धर्मात्मा होकर परम पद को प्राप्त होता है। तदनुसार करुणामय श्रीहरि उसकी अनन्य भक्ति से शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और करोड़ों सूर्यों के समान तेज का प्रसार करते हुए सहसा उसके सामने प्रकट हो गये।

भद्रतनु भगवान जगदीश्वर श्रीपति के दर्शन कर मुग्ध हो गया। उसके समस्त पाप-ताप का सदा के लिए नाश हो गया। भद्रतनु ने मस्तक नवाकर भगवान के चरणकमलों में प्रणाम किया और भगवान का स्तवन करते हुए कहने लगा :

'हे नाथ! आपके चित्त में जो दया है, उसका वर्णन कौन कर सकता है? जरा नाम का व्याध आपके चरणों में बाण मारकर भी परम पद को प्राप्त हो गया। शिशुपाल आपकी निन्दा करके भी मोक्षपद को पा गया। फिर आपके भक्तों की तो बात ही क्या है! आप ही ब्रह्मारूप से जगत का सृजन करते हैं, विष्णुरूप से पालन करते हैं और अंत में रुद्ररूप से संहार करते हैं। आपके उसी महाविष्णुरूप को मेरा नमस्कार है। प्रभो! मेरा मन सदा आपमें लगा रहे। जैसे, मेघ की गोद में बिजली की भाँति लक्ष्मी सदा आपके श्यामांग में विराजित रहती हैं, उसी प्रकार मेरा मन आपमें निविष्ट रहे। जिनसे न तो कुछ भी छोटा है और न कुछ भी बड़ा है, जिनसे यह सारा जगत व्याप्त है, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जिनकी महिमा की सीमा बतलाने में ब्रह्मा आदि देवगण भी असमर्थ हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धर्म की स्थापना और पापियों के विनाश के लिए युग-युग में प्रादुर्भूत होते हैं, उन आपमें मेरा मन संलग्न रहे। जिन्होंने समस्त जगत को अपनी माया से मोहित कर रखा है और जो आप ही माया के बंधन को काट देते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। ब्रह्मा, रुद्रादि देवगण जिनके अंशभूत हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जिनकी भक्ति करके जगत में लोग समस्त विपत्तियों से छूटकर परम पद को प्राप्त हो जाते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धन, स्तुति, दान और तपस्या के बिना केवल एकमात्र भक्ति से संतुष्ट हो जाते हैं, उन आपमें मेरा मन सदा संलग्न रहे। जो कृपापूर्वक गौ, ब्राह्मण और साधुओं का नित्य हित करते हैं, जो दीन, अनाथ, वृद्ध और रोगियों का दुःखहरण करते हैं, जो देवता, मनुष्य, नाग और मच्छर आदि जीवों में भी समभाव से विराजमान हैं, जो पण्डित, मूर्ख, धनी और दुःखी सबमें समदृष्टि हैं, जिनके लीलापूर्वक रुष्ट होने पर पर्वत भी तिनके के समान हो जाता है और जिनके तुष्ट होने पर एक सामान्य तृण भी पर्वताकार हो जाता है, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जैसे, पुण्यात्मा पुरुषों का मन पुण्य में, पिता का पुत्र में और सती का अपने स्वामी में लगा रहता है, वैसे ही मेरा मन आपमें लगा रहे और जैसे कामी का मन स्त्री में, लोभी का धन में, भूखे का भोजन में, प्यासे का जल में, गर्मी से व्याकुल का शीतल चन्द्रमा की किरणों में और जाड़े से ठिठुरते हुए मनुष्य का मन सूर्य की धूप पाने में लगा रहता है, वैसे ही मेरा मन केवल आपमें लगा रहे।'

भद्रतनु की इस स्तुति में भगवान के महत्त्व, रहस्य और भक्त की भावना एवं अनन्य कामना

का बड़ा अच्छा चित्र खींचा गया है। साधकों को इस पर ध्यान देना चाहिए।

'हे भगवन् ! मैंने बुद्धिमान होकर भी जो परस्त्रीगमन किया, मोहवश अवध्य का वध किया, अज्ञान में पड़कर विश्वासघात किया, अखाद्य-भक्षण और अपेय पदार्थ का पान किया, लोभवश दूसरे का धन हरण किया, भ्रूणहत्या, व्यभिचार, परनिन्दा, हिंसा आदि पाप किये, शरणागत मनुष्य का अहित किया, दूसरे की जीविका का छेदन किया, दूसरे को शर्मिन्दा करके नीचा दिखाया, अयोग्य दान लिया, रास्ते, देवस्थान, गोष्ठ आदि में मल-मूत्र का त्याग किया, हरे वृक्ष काटे, स्नान और भोजन के लिए तैयार मनुष्यों को रोका, पिता-माता के प्रति अभक्ति और अश्रद्धा की, घर पर आनेवाले अतिथि की पूजा नहीं की, जल पीने के लिए दौड़ती हुई गायों को रोक दिया, प्रारम्भ किये हुए व्रत को बीच में ही छोड़ दिया, पति-पत्नी में भेद पैदा करा दिया, भगवत्कथाओं में विघ्न डाले, मन लगाकर दूसरे की निन्दा सुनी, जीविका चलानेवाले का तिरस्कार किया, दूसरे के पापों की बातें सुनीं, द्विज और माँगनेवालों को गुस्से की नजर से देखा- आदि-आदि जो हजारों प्रकार के पाप जन्म-जन्मांतर में मैंने किये थे, वे सब आज आपके पुण्यदर्शन मात्र से क्षय हो गये। मैं आज निश्चय ही कृतार्थ हो गया। प्रभो ! आपको बार-बार नमस्कार है, नमस्कार है।'

भद्रतनु स्तुति करते हुए भगवान के चारु चरणकमलों में पड़ गया। भक्तवत्सल भगवान ने उसे उठाकर हृदय से लगाया और मनोवांछित वर माँगने को कहा।

भद्रतनु ने कहा : 'हे परमेश्वर ! हे देवेन्द्र ! हे दयालो ! हे अच्युत ! आज मुझको जो कुछ प्राप्त है, वह जगत में और किसको प्राप्त है ? आपके दर्शन से बढ़कर और क्या है ? तथापि हे मुरारे ! मैं आपसे एक वर चाहता हूँ, वह यह है कि हे प्रभो ! जन्म-जन्मान्तर में मेरी आपमें सुदृढ़ भक्ति बनी रहे।'

भगवान ने 'तथास्तु' कहकर उसे अपनी सख्यभक्ति प्रदान की और सब प्रकार से कृतार्थ किया। भक्त भद्रतनु के अंतःकरण में भगवान अंतर्धान हो गये। [समाप्त]

सरदार वल्लभभाई पटेल की निर्भयता

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

सरदार वल्लभभाई पटेल बोरसद से करीब ४० कि.मी. दूर, नडियाद पढ़ने गये। उनमें देशप्रेम, सत्यनिष्ठा और न्यायप्रियता बचपन से ही विद्यमान थीं।

एक दिन उन्होंने देखा कि हमें पढ़ानेवाले शिक्षक अग्रवाल, प्रधानाध्यापक भरूचीया साहब के साथ गपशप लगा रहे हैं। बच्चे पढ़ने के लिए आये हैं और शिक्षक लोग कार्यालय में ठहाके मारकर हँस रहे हैं, नाश्ता आदि कर रहे हैं।

वल्लभभाई को भगवद्भक्ति के संस्कार उनके पिता से मिले ही थे। पिता ने उन्हें बताया था कि 'ईश्वर सर्वव्यापक हैं, सर्वशक्तिमान हैं। वे सच्चाई पसंद करते हैं, क्योंकि वे सत्यस्वरूप हैं। वे न्याय पसंद करते हैं, क्योंकि वे सबका हित चाहते हैं। जो उन पर श्रद्धा रखकर अपना कार्य तत्परता से करता है, उसको परमात्मा विशेष सत्ता-स्फूर्ति देते हैं। जैसे, पिता सभी बच्चों का हित चाहते हैं परंतु जो बच्चा ज्यादा योग्य होता है, पिताजी उसको ज्यादा सत्ता दे देते हैं। ऐसे भगवान पिताओं के पिता, माताओं की माता, गुरुओं के गुरु हैं। वे सदा हमारा मंगल ही चाहते हैं।'

उन्होंने अपनी कक्षा के बच्चों को उत्साहित किया और सबने मिलकर भजन गाना शुरू कर दिया। एक बच्चा भजन गाये और बाकी के सारे उसके पीछे गाने लगे।

एक साथ भजन गाने के कारण आवाज

प्रधानाध्यापक भरूचीया साहब के कार्यालय तक पहुँच गयी। अग्रवालजी के साथ दूसरे शिक्षक भी आ गये। अग्रवालजी ने कहा : 'यह क्या करते हो ?' और हाथ पकड़कर वल्लभभाई को कक्षा से बाहर निकाल दिया। बच्चों ने देखा कि यह तो अन्याय है, जुल्म है। अतः दूसरे बच्चे भी कक्षा से बाहर निकल गये।

दूसरे दिन स्कूल शुरू हुआ। वल्लभभाई भी आये, परंतु शिक्षक ने कह दिया : ''इसको नहीं आने देंगे।''

बच्चों ने कहा : ''ये नहीं आयेगा तो हम भी नहीं आयेंगे।'' और बच्चे बाहर ही घूमने लगे।

अग्रवालजी ने धमकाया : ''मैं तुम लोगों की खबर ले लूँगा।''

यह कहकर वे प्रधानाध्यापक के पास गये।

भरूचीया साहब और अग्रवाल साहब की आपस में मित्रता थी। उन्होंने वल्लभभाई को बुलवाया और कहा : ''ऐ लड़के! तूने भजन गवाया और पूरे स्कूल में शोर मचा दिया। तूने गलती की है अतः अपने शिक्षक से माफी माँग।''

तब 'सत्य ही ईश्वर है' ऐसा समझनेवाले वल्लभभाई ने कहा : ''माफी ? माफी मैं माँगूँ ? मैं माफी नहीं माँगूँगा। मेरा गुनाह नहीं था। गुनाह न होने पर भी माँफी माँगना अनुचित है। अनुचित को समर्थन देने का पाप मैं नहीं करूँगा।''

''इतना शोर हो रहा था।''

''साहब ! हम माता-पिता, कुटुम्ब-परिवार को छोड़कर इतनी दूर पढ़ने के लिए आते हैं और अग्रवाल साहब पढ़ाना छोड़कर आपके साथ गप्पें मार रहे थे, नाश्ता कर रहे थे। बच्चे शोर मचा रहे थे तो मैंने भजन गवाया। इसमें मैंने क्या गलती की ? माफी तो उनको माँगनी चाहिए कि अपना कर्तव्य भूलकर बच्चों में बुरे संस्कार पड़ने का मौका दे रहे थे। अब आप ही न्याय कीजिये।''

भरूचीया साहब के लिए मानों, पैरों तले जमीन ही खिसक गयी। उन्होंने अग्रवाल साहब से कहा : ''बड़ा तेजस्वी विद्यार्थी है! इससे दादागिरी नहीं चलेगी, अन्याय नहीं चलेगा। गलती अपनी है। ऐसे विद्यार्थी को दबाना ठीक नहीं है। अगर बात आगे बढ़ जायेगी तो तेरी-मेरी नौकरी चली जायेगी। जाओ, चुपचाप पढ़ाना शुरू कर दो।''

न्यायप्रियता और देशप्रेम तो सरदार वल्लभभाई में कूट-कूटकर भरे थे। किसीके प्रति अन्याय होता वे नहीं देख सकते थे।

उस समय अंग्रेज हुकूमत थी। अतः अंग्रेज लड़कों से भारतीय लड़के दबकर रहते थे। एक बार किसी भारतीय लड़के को किसी अंग्रेज ने धमकाया और जोर-से थप्पड़ मार दिया कि 'इधर से क्यों गया ? तुम हिन्दुस्तानी को इधर से नहीं जाना चाहिए।'

वल्लभभाई ने यह देखा तो पहले तो चुप रहे परंतु जब उसने दूसरी बार भी थप्पड़ मार दिया तो उनसे सहा न गया। हालाँकि उनकी उम्र छोटी थी परंतु समझ छोटी न थी।

दूसरे दिन जब वह अंग्रेज लड़का स्कूल जा रहा था तो वल्लभभाई ने हाकी की लकड़ी से उसके पैर पर जोर-से प्रहार किया। लड़का गिर पड़ा और इधर-उधर देखने लगा। वल्लभभाई ने उसको उठाया और धड़ाक से दो तमाचे गाल पर रख दिये : ''क्यों, तुम्हीं थे न मेरे हिन्दुस्तानी भाई को अकारण डाँटने और मारनेवाले ?''

अंग्रेज ने कहा : ''मैं तुझे देख लूँगा।''

''क्या देख लेगा, अभी ले देख ले।''

धड़ाक से तीसरा तमाचा भी लगा दिया।

सत्यप्रिय, न्यायप्रिय और देशप्रेमी यही सरदार वल्लभभाई पटेल आगे चलकर देश के गणमान्य नेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। सरदार वल्लभभाई पटेल को कौन नहीं जानता ?

हे भारत के विद्यार्थियो ! तुम भी साहसी, न्यायप्रिय और सत्यनिष्ठ बनो। जीवन में किसीके प्रति न अन्याय करो, न किसीका अन्याय सहन करो। संयम-सदाचारयुक्त जीवन जीकर अपना जीवन तो समुन्नत करो ही, साथ ही देश की उन्नति के लिए भी प्रयत्नशील रहो। वही सफल होता है, जो आत्म-उन्नति करना जानता है। अपनी संस्कृति पर कुठाराघात करनेवाले विदेशियों की कुचालों से सावधान रहो और अपनी संस्कृति की गरिमा बढ़ाओ। इसीमें तुम्हारा, परिवार का, समाज का, राष्ट्र का और मानवता का हित निहित है।

आपमें भी छुपी हैं ये शक्तियाँ...

(दिनांक १२ अक्टू. से २१ अक्टू. २००२ तक मांगल्य धाम, रतलाम (म.प्र.) में शरद पूर्णिमा पर आयोजित 'शक्तिपात साधना शिविर' में पूज्यश्री ने शिविरार्थियों को अपनी सुषुप्त दिव्य शक्तियों को जागृत करने का आह्वान किया।

विक्रम संवत् १७८१ में प्रयागराज इलाहाबाद में घटित एक घटना का जिक्र करते हुए पूज्यश्री ने लोकपावनी वाणी में कहा :)

प्रयागराज इलाहाबाद में त्रयोदशी के कुंभ-स्नान का पर्व-दिवस था। कुंभ में कई अखाड़ेवाले, जति-जोगी, साधु-संत आये थे । उसमें कामकौतुकी नामक एक ऐसी जाति भी आयी थी जो भगवान के लिए ही राग-रागिनियों का अभ्यास किया करती थी तथा भगवद्गीत के सिवाय और कोई गीत नहीं गाती थी। उन्होंने भी अपना गायन-कार्यक्रम कुंभ मेले में रखा था।

शृंगेरी मठाधीश श्री सोमनाथाचार्यजी भी इस कामकौतुकी जातिवालों के संयम और राग-रागिनियों में उनकी कुशलता के बारे में जानते थे, इसलिए वे भी वहाँ पधारे थे । उस कार्यक्रम में सोमनाथाचार्यजी की उपस्थिति के कारण लोगों को विशेष आनंद हुआ और जब गुणमंजरी देवी भी आ पहुँची तो उस आनंद में चार चाँद लग गये।

गुणमंजरी देवी ने चान्द्रायण और कृच्छ्र व्रत किये थे । शरीर के दोषों को हरनेवाले जप-तप और संयम को अच्छी तरह से साधा था। लोगों ने मन-ही-मन उसका अभिवादन किया।

गुणमंजरी देवी भी केवल गीत ही नहीं गाती थी, वरन् उसने अपने जीवन में दैवी गुणों को इतना विकसित किया था कि जब चाहे अपनी दैविक सखियों को बुला सकती थी, जब चाहे बादल मँडरवा सकती थी, बिजली चमका सकती थी। उस समय उसकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँच चुकी थी।

कार्यक्रम आरम्भ हुआ । कामकौतुकी जाति के आचार्यों ने शब्दों की पुष्पांजलि से ईश्वरीय आराधना का माहौल बनाया । अंत में गुणमंजरी देवी से प्रार्थना की गयी।

गुणमंजरी देवी ने वीणा पर अपनी उँगलियाँ रखीं । माघ का महीना था । ठण्डी-ठण्डी हवाएँ चलने लगीं । थोड़ी ही देर में मेघ गरजने लगे, बिजली चमकने लगी और बारिश का माहौल बन गया । आनेवाली बारिश से बचने के लिए लोगों का चित्त कुछ विचलित होने लगा । इतने में सोमनाथाचार्यजी ने कहा :

''बैठे रहना । किसीको चिंता करने की जरूरत नहीं है। ये बादल तुम्हें भिगोयेंगे नहीं। ये तो गुणमंजरी देवी की तपस्या और संकल्प का प्रभाव है।''

संत की बात का उल्लंघन करना मुक्तिफल को त्यागना और नरक के द्वार खोलना है । लोग बैठे रहे।

३२ राग और ६४ रागिनियाँ हैं । राग और रागिनियों के पीछे उनके अर्थ और आकृतियाँ भी होती हैं। शब्द के द्वारा सृष्टि में उथल-पुथल मच सकती है। वे निर्जीव नहीं हैं, उनमें सजीवता है। जैसे 'एयर कंडीशनर' चलाते हैं तो वह आपको हवा से पानी अलग करके दिखा देता है, ऐसे ही इन पाँच भूतों में स्थित दैवी गुणों को जिन्होंने साध लिया है, वे शब्द की ध्वनि के अनुसार बुझे दीप जला सकते हैं, वृष्टि कर सकते हैं - ऐसे कई प्रसंग आपने-हमने देखे-सुने होंगे। गुणमंजरी देवी इस प्रकार की साधना से सम्पन्न देवी थी।

माहौल श्रद्धा-भक्ति और संयम की पराकाष्ठा पर था। गुणमंजरी देवी ने वीणा बजाते हुए आकाश की ओर निहारा। घनघोर बादलों में से बिजली की तरह एक देवांगना प्रकट हुई। वातावरण संगीतमय-नृत्यमय होता जा रहा था। लोग दंग रह गये! आश्चर्य को भी आश्चर्य के समुद्र में गोते खाने पड़े, ऐसा माहौल बन गया!

लोग भीतर-ही-भीतर अपने सौभाग्य की सराहना किये जा रहे थे। मानों, उनकी आँखें इस दृश्य को पी जाना चाहती थीं। उनके कान उस संगीत को पचा जाना चाहते थे। उनका जीवन उस दृश्य के साथ एकरूप होता जा रहा था...। 'गुणमंजरी, धन्य हो तुम !' कभी वे गुणमंजरी को धन्यवाद देते हुए उसके गीत में खो जाते और कभी उन देवांगना के शुद्ध-पवित्र नृत्य को देखकर नतमस्तक हो उठते !

कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। देखते-ही-देखते गुणमंजरी देवी ने देवांगना को विदा दी। सबके हाथ जुड़े हुए थे, आँखें आसमान की ओर निहार रही थीं और दिल अहोभाव से भरा था। मानों, प्रभु-प्रेम में, प्रभु की अद्भुत लीला में खोया-सा था...

शृंगेरी मठाधीश श्री सोमनाथाचार्यजी ने हजारों लोगों की शांत भीड़ से कहा :

'सज्जनो ! इसमें आश्चर्य की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे पूर्वज देवलोक से भारतभूमि पर आते और संयम, साधना तथा भगवत्प्रीति के प्रभाव से अपने वांछित दिव्य लोकों तक की यात्रा करते। जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक (ब्रह्मलोक) तक की यात्रा करने में सफल होते थे। कोई-कोई ब्रह्मस्वरूप परमात्मा का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके यहीं ब्रह्ममय अनन्त ब्रह्माण्डव्यापी अपने आत्म-ऐश्वर्य को पा लेते थे।

समय के फेर से लोग सब भूलते गये। अनुचित खान-पान, स्पर्श-दोष, संग-दोष, विचार-दोष आदि से लोगों की मति और सात्त्विकता मारी गयी। लोगों में छल-कपट और तमस बढ़ गया, जिससे वे दिव्य लोकों की बात ही भूल गये, अपनी असलियत को ही भूल गये...

गुणमंजरी देवी ने संग-दोष से बचकर संयम से साधन-भजन किया तो उसका देवत्व विकसित हुआ और उसने देवांगना को बुलाकर तुम्हें अपनी असलियत का परिचय दिया !

तुम भी इस दृश्य को देखने के काबिल तब हुए, जब तुमने कुंभ के इस पर्व पर, प्रयागराज के पवित्र तीर्थ में संयम और श्रद्धा-भक्ति से स्नान किया। इसके प्रभाव से तुम्हारे कुछ कल्मष कटे और पुण्य बढ़े। पुण्यात्मा लोगों के एकत्रित होने से गुणमंजरी देवी के संकल्प में सहायता मिली और उसने तुम्हें यह दृश्य दिखाया। अतः इसमें आश्चर्य न करो।'

आप में भी ये शक्तियाँ छुपी हैं। तुम भी चाहो तो अनुचित खान-पान, संग-दोष आदि से बचकर, सद्गुरु के निर्देशानुसार साधना के पथ पर अग्रसर हो इन शक्तियों को विकसित करने में सफल हो सकते हो। केवल इतना ही नहीं, वरन् परब्रह्म-परमात्मा को पाकर सदा-सदा के लिए मुक्त भी हो सकते हो, अपने मुक्तस्वरूप का यहीं अनुभव कर सकते हो...

एकादशी माहात्म्य

[सफला एकादशी : ३० दिसम्बर २००२]

युधिष्ठिर ने पूछा : स्वामिन् ! पौष मास के कृष्णपक्ष (गुज., महा. के लिए मार्गशीर्ष) में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? उसकी क्या विधि है तथा उसमें किस देवता की पूजा की जाती है ? यह बताइये ।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : राजेन्द्र ! बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों से भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना एकादशी व्रत के अनुष्ठान से होता है । पौष मास के कृष्णपक्ष में 'सफला' नाम की एकादशी होती है । उस दिन विधिपूर्वक भगवान नारायण की पूजा करनी चाहिए । जैसे नागों में शेषनाग, पक्षियों में गरुड़ तथा देवताओं में श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतों में एकादशी तिथि श्रेष्ठ है ।

राजन् ! 'सफला एकादशी' के दिन नाम-मंत्रों का उच्चारण करके नारियल के फल, सुपारी, बिजौरा तथा जमीरा नीबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषतः आम के फलों और धूप-दीप से श्रीहरि का पूजन करे । 'सफला एकादशी' के दिन विशेष रूप से दीप-दान करने का विधान है । रात को वैष्णव पुरुषों के साथ जागरण करना चाहिए । जागरण करनेवाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्ष तपस्या करने से भी नहीं मिलता ।

नृपश्रेष्ठ ! अब 'सफला एकादशी' की शुभकारिणी कथा सुनो । चम्पावती नाम से विख्यात एक पुरी है, जो कभी राजा माहिष्मत की राजधानी थी । राजर्षि माहिष्मत के पाँच पुत्र थे । उनमें जो ज्येष्ठ था, वह सदा पापकर्म में ही लगा रहता था तथा परस्त्रीगामी और वेश्यासक्त था । उसने पिता के धन को पापकर्म में ही खर्च किया । वह सदा दुराचारपरायण तथा वैष्णवों और देवताओं की निन्दा किया करता था । अपने पुत्र को ऐसा पापाचारी देखकर राजा माहिष्मत ने राजकुमारों में उसका नाम लुम्भक रख दिया । फिर पिता और भाइयों ने मिलकर उसे राज्य से बाहर निकाल दिया । लुम्भक गहन वन में चला गया । वहीं रहकर उसने प्रायः समूचे नगर का धन लूट लिया । एक दिन जब वह रात में चोरी करने के लिए नगर में आया तो सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया । किंतु जब उसने अपने को राजा माहिष्मत का पुत्र बतलाया तो सिपाहियों ने उसे छोड़ दिया । फिर वह वन में लौट आया और मांस तथा वृक्षों के फल खाकर जीवन-निर्वाह करने लगा । उस दुष्ट का विश्राम-स्थान पीपल वृक्ष के निकट था । वह पीपल का वृक्ष वर्षों पुराना था । उस वन में वह वृक्ष एक महान देवता माना जाता था । पापबुद्धि लुम्भक वहीं निवास करता था ।

एक दिन किसी संचित पुण्य के प्रभाव से उसके द्वारा एकादशी के व्रत का पालन हो गया । पौष मास में कृष्णपक्ष की दशमी के दिन पापिष्ठ लुम्भक ने वृक्षों के फल खाये और वस्त्रहीन होने के कारण रातभर जाड़े का कष्ट भोगा । उस समय न तो उसे नींद आयी और न आराम ही मिला । वह निष्प्राण-सा हो रहा था । सूर्योदय होने पर भी उसको होश नहीं आया । 'सफला एकादशी' के दिन भी लुम्भक बेहोश पड़ा रहा । दोपहर होने पर उसे चेतना प्राप्त हुई । फिर इधर-उधर दृष्टि डालकर वह आसन से उठा और लँगड़े की भाँति लड़खड़ाता हुआ वन के भीतर गया । वह भूख से दुर्बल और पीड़ित हो रहा था । राजन् ! लुम्भक बहुत-से फल लेकर जब तक विश्राम-स्थल पर लौटा, तब तक सूर्यदेव अस्त हो गये । तब उसने उस पीपल वृक्ष की जड़ में बहुत-से फल निवेदन करते हुए कहा : 'इन फलों से लक्ष्मीपति भगवान विष्णु संतुष्ट हों ।' यों कहकर लुम्भक ने रातभर नींद नहीं ली । इस प्रकार

अनायास ही उसने इस व्रत का पालन कर लिया। उस समय सहसा आकाशवाणी हुई : 'राजकुमार ! तुम 'सफला एकादशी' के प्रसाद से राज्य और पुत्र प्राप्त करोगे।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने वह वरदान स्वीकार किया। इसके बाद उसका रूप दिव्य हो गया। तबसे उसकी उत्तम बुद्धि भगवान् विष्णु के भजन में लग गयी। दिव्य आभूषणों से सुशोभित होकर उसने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया और पन्द्रह वर्षों तक वह उसका संचालन करता रहा। उसको मनोज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह बड़ा हुआ, तब लुम्भक ने तुरंत ही राज्य की ममता छोड़कर उसे पुत्र को सौंप दिया और वह स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के समीप चला गया, जहाँ जाकर मनुष्य कभी शोक में नहीं पड़ता।

राजन् ! इस प्रकार जो 'सफला एकादशी' का उत्तम व्रत करता है, वह इस लोक में सुख भोगकर मरने के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त होता है। संसार में वे मनुष्य धन्य हैं, जो 'सफला एकादशी' के व्रत में लगे रहते हैं, उन्हींका जन्म सफल है। महाराज ! इसकी महिमा को पढ़ने, सुनने तथा उसके अनुसार आचरण करने से मनुष्य राजसूय यज्ञ का फल पाता है।

आत्मबल जगाओ

तुम्हें आत्मवान हो जाना है।
तन का अभिमान हटाना है॥
भेद भिन्नता ममता तजकर, समता को अपनाना है॥
समता में ही नित्य शांति है, नहीं विषमता लाना है॥
आते कठिन विघ्न कितने हों, उनसे प्राण बचाना है॥
देख देखकर पग धरना है, कहीं न ठोकर खाना है॥
इधर-उधर कुछ भी न देखना, सुनना कुछ न सुनाना है॥
केवल आपने सत् स्वरूप में, मन की सुरति जमाना है॥
काम क्रोध लोभादि प्रबल खल, इनके वेग मिटाना है॥
तृष्णा तृप्त नहीं होती है, उससे पिण्ड छुड़ाना है॥
सुख का भोगी दुःख पाता है, यह मन को समझाना है॥
अपना नहीं जगत में कुछ भी, भ्रम से ही सुख माना है॥
ठहरो पथिक सत्य चेतन में, असत् से प्रीति हटाना है॥

- पथिकजी महाराज

अमरिकी किशोर आत्महत्या करना चाहते हैं !

भौतिक सुख-सुविधाओं के उपभोग में मनुष्य जितना असंयमी होगा, जीवन में असहिष्णुता तथा असंतोष की उतनी ही वृद्धि होगी व इसके परिणामस्वरूप समाज में आत्महत्या करनेवालों और उन्माद के रोगियों की संख्या बढ़ेगी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भौतिक दृष्टि से सबसे अधिक सुख-सुविधासम्पन्न अमरिका है, जहाँ आत्महत्याओं और पागलों की संख्या भी सबसे अधिक है।

१४ जुलाई २००२ को 'अमरिका सब स्टांस एब्यूज एंड मेंटल हेल्थ सर्विसेस एडमिनिस्ट्रेशन' की वाशिंगटन में जारी रिपोर्ट बताती है कि आर्थिक रूप से उन्नत अमरिकन सभ्यता का दूसरा पहलू बड़ा ही डरावना तथा भविष्य अंधकारपूर्ण है : ३० लाख अमरिकी किशोरों ने कभी-न-कभी आत्महत्या के बारे में गम्भीरता से विचार किया है या आत्मघात करने की कोशिश की है। वर्ष २००० में १४ से १७ वर्ष के आयुवर्ग के १३ % से अधिक अमरिकी किशोरों ने आत्महत्या के बारे में सोचा था और उनमें से सिर्फ ३६ % किशोरों को इलाज या परामर्श मिल पाया। अधिकारी चार्ल्स क्यूरी ने 'अवसाद(डिप्रेशन)' को आत्महत्या का प्रमुख कारण बताया है। पश्चिमी अमेरिका के किशोर आत्महत्या के बारे में सबसे अधिक सोचते हैं। यहाँ १२ से १७ वर्ष के आयुवर्ग के १३.५ % किशोरों ने आत्महत्या का विचार किया।

वहाँ के बच्चों के जीवन में थोड़ी-सी भी प्रतिकूलता आती है तो वे माँ-बाप का अपमान कर बैठते हैं। वहाँ की शिक्षा, सभ्यता और आचार-विचार, उच्छृंखलता व असंयम पर लगाम नहीं लगा पा रहे हैं। उन बच्चों में नैतिक तथा धार्मिक संस्कारों का अभाव होने से तथा अपनी शुद्ध, सात्त्विक ऊर्जा के विकास के अभाव के कारण ही वे मनमुखता का मार्ग पकड़ लेते हैं। अश्लील चलचित्र, भोगी और मनमुखी वातावरण उनकी बुद्धि को कुंठित कर देता है। वहाँ की शिक्षा से वहाँ के लोग परेशान और अशांत हैं। उनका अनुकरण करने की भूल से बचें। इन दोषों से मुक्त तथा मानव को महामानव व देवत्व में प्रतिष्ठित करने में ऋषिप्रणीत भारतीय शिक्षा-पद्धति सक्षम है।

पीपल का वृक्ष

भारतीय संस्कृति में वटवृक्ष, पीपल को पूजनीय माना जाता है और बड़ी श्रद्धा से पूजा की जाती है। प्राचीन काल में लोग शांति के लिए जिस प्रकार इन्द्र, वरुण आदि देवताओं की प्रार्थना करते थे, उसी प्रकार वृक्षों की भी प्रार्थना करते थे।

वनिनो भवन्तु शं नो।' (ऋग्वेद : ७.३५.५)

अर्थात् 'वृक्ष हमारे लिए शांतिकारक हों।' यज्ञ का जीवन वृक्षों की लकड़ी को ही माना गया है। यज्ञों में समिधा के निमित्त बरगद, गूलर, पीपल और पाकड़ (प्लक्ष) इन्हीं वृक्षों की लकड़ियों को विहित माना गया है और कहा गया है कि ये चारों वृक्ष सूर्य-रश्मियों के घर हैं :

'एते वै गन्धर्वाप्सरसां गृहाः।' (शत. ब्राह्मण)

'भगवद्गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने **'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्'** कहकर पीपल को अपना स्वरूप बताया है।

❊ औषधि प्रयोग ❊

रतौंधी : पीपल की लकड़ी के टुकड़े को गोमूत्र के साथ शिला पर घिसकर उसका अंजन आँखों में लगाने से रतौंधी में लाभ होता है।

मलेरिया ज्वर : पीपल की टहनी का दातुन कुछ दिनों तक करने से तथा उसको चूसने से मलेरिया के बुखार में लाभ होता है।

कान का दर्द या बहरापन : पीपल की ताजी हरी पत्तियों को निचोड़कर उसका रस कान में डालने से कान का दर्द दूर होता है। कुछ समय तक इसके नियमित सेवन से कान का बहरापन भी मिटता है।

खाँसी और दमा : पीपल के सूखे पत्तों को खूब कूटना चाहिए। जब चूर्ण बन जाय, तो उसे कपड़े से छान लेना चाहिए। लगभग आधा तोला (६ ग्राम) चूर्ण में मधु मिलाकर रोज सुबह एक माह तक चाटने से दमा व खाँसी में स्पष्ट लाभ होता है।

धातु-दौर्बल्य और वन्ध्यत्व : पीपल वृक्ष के फल में अद्भुत गुण हैं। फलों को सुखाएँ, कूटें और कपड़-छानकर रखें। रोज एक गिलास दूध में ३ ग्राम चूर्ण मिलाकर पीने से धातु-दौर्बल्य दूर होता है। स्त्रियों के प्रदर और मासिक धर्म की समस्याओं में तथा प्रसव के बाद दूध के साथ नियमित रूप से लेने से बहुत लाभ होता है। पुराना प्रदर जड़ से मिट जाता है और मासिक धर्म का खुलकर न आना तथा अनियमितता भी दूर हो जाती है।

सर्दी और सिरदर्द : सिर्फ पीपल की २-४ कोमल पत्तियों को चूसने से सर्दी से होनेवाला सिरदर्द कुछ ही मिनटों में छूमंतर हो जाता है।

मेधाशक्तिवर्धक व पित्तशामक : पीपल के पेड़ की लकड़ी का मेधाशक्तिवर्धक प्रभाव शास्त्रों में वर्णित है। पीपल की पुरानी, सूखी लकड़ी से बने गिलास में रखे पानी को पीने से अथवा पीपल की लकड़ी का चूर्ण पानी में भिगोकर छना हुआ पानी पीने से व्यक्ति मेधावी होता है। पित्त-सम्बन्धी, शारीरिक गर्मी-सम्बन्धी तमाम रोगों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। शर्बत, ठण्डाई आदि बनाते समय इस चूर्ण को कुछ समय के लिए पानी में भिगो दें या चूर्ण को पानी में उबालकर छान लें तथा ठण्डा कर शर्बत, ठण्डाई आदि में मिलाकर पियें। पीपल के हरे पेड़ काटना अशुभ व हानिकारक है।

पाकिस्तान में मसजिद ध्वस्त की

भारत में मुसलिम प्रायः शोर मचाते रहते हैं कि मसजिद तो खुदा का घर है। वह वैधरूप से बनी हो या अवैधरूप से, पर उसे हटाया नहीं जा सकता। ऐसे लोगों को पाकिस्तान में जाकर अपनी छाती पीटते हुए आन्दोलन करना चाहिए। जहाँ राजधानी इस्लामाबाद में ही १२ अनधिकृत मसजिदों को गत दिनों गिरा दिया गया। इस कार्य को राजधानी विकास अधिकरण, राजधानी क्षेत्र प्रशासन, जिला औकाफ विभाग तथा इसलामी पुलिस ने संयुक्त रूप से किया। आजकल वहाँ अनधिकृत रूप से बने मदरसों तथा मसजिदों पर कार्यवाही की जा रही है। पहले उन्हें नोटिस दिया जाता है, फिर बुलडोजर चलाकर गिरा दिया जाता है। - 'पथिक संदेश' से साभार

चार बार भगवन्नाम जप से अद्भुत लाभ

मेरे पिताजी पर राजनेताओं द्वारा किसीकी हत्या का झूठा आरोप लगाया गया था । उसी सिलसिले में १९९२ से केस चल रहा था । कोर्ट में कई तारीखें पड़ चुकी थीं लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ ।

फरीदाबाद समिति के डॉ. जेटवानीजी से बातचीत हुई । उन्होंने बताया कि जुल्म करना तो पाप है लेकिन जुल्म सहना दुगना पाप है । हमारे बापूजी कहते हैं कि अगर तुम निर्दोष हो और तुम्हें बापूजी के वचन पर श्रद्धा-विश्वास है तो चार बार 'नारायण' भगवन्नाम बोलकर कार्य शुरू करो । इससे सफलता अवश्य मिलती है । आप भी इसी भगवन्नाम का उच्चारण करके ही जज के सामने जायें तो आपका और पिताजी का भला होगा । उसी दिन मैं इसी महामंत्र का जप करते हुए गया और मेरे पिताजी को बाइज्जत बरी कर दिया गया ।

- श्री देवेन्द्र भड़ाना मेयर, फरीदाबाद

** ऋषि प्रसाद पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि ऋषि प्रसाद पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्य क्रमांक/ रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है ऐसा लिखना अनिवार्य है । जिस रसीद में यह नहीं लिखा होगा उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा ।*

** नये सदस्यों को सदस्यता के अन्तर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले में एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा ।*

ब्रह्मज्ञानी संतों की बात ही कुछ निराली है

लीमड़ी (गुज.) : चुनाव के दिनों में गरीब-गुरबों, आदिवासियों के क्षेत्र में नेताओं की भीड़ मिलेगी - 'वोट' पाने के लिए, नश्वर पद (कुर्सी) पाने के लिए... कभी-कभार कोई पुण्यात्मा सेठ-साहूकार भी दरिद्रनारायणों के बीच मिलेंगे - पुण्य अर्जित कर बदले में लोक-परलोक की नश्वर सुविधाएँ पाने के लिए अथवा दूसरे सेठों के बीच अपना अहं सजाने के लिए... परंतु सबको आत्मदृष्टि से निहारनेवाले ब्रह्मज्ञानी संतों की बात ही कुछ निराली है । वे भी दरिद्रनारायणों के पास पहुँचेंगे - जीवनोपयोगी वस्तुओं के साथ ही शाश्वत ज्ञान की ऊँची समझ देने के लिए, लौकिक धन के साथ ही शाश्वत धन लुटाने के लिए...

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखने को मिला २३ अक्टू. को दाहोद (गुज.), २४ व २५ अक्टू. को लीमड़ी (गुज.), २६ व २७ अक्टू. को बाँसवाड़ा (राज.), ३ नवं. को वाघपुर (गुज.), २४ नवं. को समोड़ा (गुज.) आदि क्षेत्रों के आदिवासी, गरीब-गुरबों में आयोजित भण्डारों में । पूज्य बापूजी ने इन भण्डारों में दीन-दुःखियों के हृदय की व्यथाएँ सुनीं । उन्हें सांत्वना, मार्गदर्शन, आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुएँ वस्त्र, बर्तन, कम्बल, अनाज, साबुन, तेल, दियासलाई, मोमबत्ती आदि के साथ ही दीवाली के उपलक्ष्य में दक्षिणा एवं स्टील के डिब्बों में मिठाईयाँ वितरित की गयीं । पूज्य बापूजी ने वे जहाँ हैं वहीं से उनका उत्थान हो ऐसी सरल युक्तियाँ उनकी क्षेत्रीय भाषा में ही उन्हें बतायीं । **'भूखे भजन न होई गोपाला'** इस उक्ति का मर्म जानकर आयोजित किये गये इन भण्डारों में **'भोजन के साथ भजन'** का भी लाभ लिया

आदिवासी भाई-बहनों ने।

इस प्रकार दुःखी-पीड़ित, मोहताज, दरिद्रों के आपत्तियों (अकाल, बाढ़, तूफान) एवं त्यौहार, पर्व, उत्सवों के अवसर पर लोकसंत पूज्य बापूजी उन्हें मदद का हाथ देने हेतु उनके बीच पहुँच जाते हैं।

करोड़ों-करोड़ों दिलों के सरताज लोकसंत श्री आसारामजी बापू द्वारा समाज में भक्ति-जागृति के साथ-साथ समाजोत्थान की प्रवृत्तियाँ भी वर्षों से चलायी जा रही हैं। इन्हीं के एक अंग के रूप में मोड़ासा (गुज.) तहसील के बायल, ढांखरोल, खुमापुर, रखियाल, बाकरोल, गाजला, अमरापुर, पालनपुर आदि ग्रामों में जिन लोगों को कोई आधार नहीं है, सरकारी सहाय नहीं मिली एवं समाज, अड़ोस-पड़ोस से कोई मदद नहीं मिली ऐसे निराधार लोगों का आधार बनकर संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा दारिद्रय-रेखा से नीचेवाले लोगों के लिए वितरण कार्ड दिये गये हैं। उन्हें हर महीने अनाज, तेल, किराना आदि नियमित दिया जाता है। इस प्रकार सत्संग के साथ निराधारों को आधार देने की ये प्रवृत्तियाँ लोगों में अभिनंदन पात्र बनी हैं।

बाँसवाड़ा (राज.) : २६-२७ अक्टूबर। बाँसवाड़ा व आसपास के विभिन्न क्षेत्रों से आये जनसमुदाय को पूज्यपाद बापू ने सनातन धर्म की महानता का पाठ पढ़ाया। जीवन को उन्नत बनाने की अनेक कुंजियाँ बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''जिस दिन भारतवासी गौ का सम्मान और गीता का ज्ञान अंगीकार कर लेंगे, उस दिन विश्व के शिखर पर पहुँचने का हिन्दुस्तान का स्वप्न साकार हो जायेगा।''

पूज्यश्री ने तमिलनाडु की मुख्यमंत्री सुश्री जयललीता द्वारा धर्मान्तरण के विरोध में लागू किये गये आध्यादेश की सराहना की और कहा कि काश ! अब कोई मर्द मैदान में आये और पूरे देश में धर्म परिवर्तन को रोकने के लिए कारगर प्रयास करे। अब उनका अनुकरण सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को करना चाहिए।

बाँसवाड़ा में सत्संग की पूर्णाहुति कर पूज्यश्री एकान्तवास के लिए मोडासा आश्रम (गुज.) पहुँचे।

पूज्यश्री ने ऐसे मनायी दीपावली

वाघपुर (गुज.) : ३ नवम्बर। दीपावली की पूर्व-संध्या... अमदावाद आश्रम में देश के कोने-कोने से आये साधकगण दर्शन-सत्संग के लिए उत्कंठित... लेकिन पूज्यश्री का ध्यान गरीबों-आदिवासियों की ओर था कि वे दीपावली कैसे मना पायेंगे ?

आदिवासियों व सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में 'छाछवाले बाबा' व 'मिठाईवाले बाबा' के नाम से प्रसिद्ध पूज्य बापूजी अन्ततः पहुँच ही गये ग्रामीण-आदिवासी अंचल वाघपुर में। सत्संग-प्रवचन हुआ। फिर प्रारम्भ हुआ भण्डारा। भोजन-प्रसाद से तृप्त हुए गरीबों-आदिवासियों को अनुशासनबद्ध ढंग से अनाज, तेल, मिठाई के डिब्बे, बर्तन, कम्बल, वस्त्र, टोपी, तुलसी की माला, दक्षिणा आदि दिये गये। परम पूज्य बापूजी उनके पुराने-फटे, वस्त्र उतरवाते, नये वस्त्र पहनने को देते, फिर दक्षिणा आदि देकर सस्नेह विदा करते। प्रसन्नता व आनंद की लहरों से लहराते वे चले अपने-अपने घरों की ओर... मानों कह रहे थे : 'मनी आज अच्छी दीवाली हमारी... '

अमदावाद आश्रम : ४ से १६ नवम्बर। देश के विभिन्न भागों से आये हजारों भक्तों की निगाहें उस समय उल्लसित हो गयीं जब पूज्यश्री साँवलिया सेठ (श्रीकृष्ण) के परिधान में लोगों के सम्मुख हुए। कई दिनों की इंतजारी... उस दिन भी सुबह से छायी थी बेकरारी। भक्तों की बेकरार आँखें पूज्यश्री को इस रूप में अपने पास पाकर मानों पलक झपकाने का नाम ही नहीं ले रही थीं।

इस अवसर पर भक्तों ने ६८ प्रकार के व्यंजनों का भोग पूज्यश्री को अर्पित किया जो पूज्यश्री ने भक्तों में बँटवाया। अमावस्या की काली रात में बाहर जगमगा रहा था दीपों का प्रकाश और पूज्यश्री कर रहे थे सत्संग-प्रवचन व विभिन्न अदाओं से आन्तर-प्रकाश !

भक्तों को सारगर्भित सन्देश देते हुए ब्रह्मनिष्ठ

बापूजी ने कहा :

''बापूजी ! साँवलिया सेठ का परिधान धारण करें, श्रीकृष्ण को ५६ भोग अर्पण किये जाते हैं तो आपके लिए ६८ भोग बनाये हैं - स्वीकार करें, अपने एकान्त के क्षणों में भी हमें सत्संग दर्शन देने पधारें आदि तुम्हारी सारी बातें मानीं, अब तुम भी मेरी एक बात मानो- अपने-आप को पहचानो !''

पूज्य बापूजी की करुणा का अनुभव समाज के हर स्तर के लोगों को विभिन्न अवसरों पर होता रहता है । दीपावली के पर्व का हर्षोल्लास दीन-दुःखी, दरिद्र एवं पीड़ितों के घरों में पहले पहुँचाकर बाद में पूज्यश्री अमदावाद आश्रम में देश-विदेश से आये साधकों व श्रद्धालुओं के पास पहुँचे ।

कोई भी पर्व मनाना तब सफल होता है जब उसके वास्तविक उद्देश्य को जाना जाय । पूज्यश्री ने दीपावली के पर्व का उद्देश्य बताया : बाह्य उल्लास के साथ मन की प्रसन्नता छलकाना और आत्मिक आनंद का रस उभारना ।

जिनके दर्शन से पाप कटते हैं, जिनके हितकारी मधुर वचनों से संशय मिटते हैं, जिनकी अमीमय नजरों से आत्मशांति की वर्षा होती है ऐसे ब्रह्मज्ञानी संत के दर्शन-सत्संग-सान्निध्य की त्रिवेणी... पर्वपुंज दीपावली का पावन अवसर... जाबल्य ऋषि की तपस्थली... साबरमती के तट का पवित्र वातावरण... फिर भक्तों का दिल कैसे थमा रह सकता था ? वह तो उनके सद्गुरु का हो चुका था ।

नूतन वर्ष का मंगल सन्देश देते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''नूतन वर्ष में आपको खूब धन-यश-स्वास्थ्य का लाभ हो यह अधूरा आशीर्वाद मैं नहीं देता । मैं आप सबको आशीर्वाद देता हूँ कि बाह्य लाभ तो हो पर आंतरिक सूझबूझ और समता का ऐसा लाभ तुम्हें हो कि उन नश्वर चीजों में आसक्ति न हो और शाश्वत परमात्मा से विमुखता न हो ।''

दीपावली के शुभ अवसर पर पूज्यश्री की अमृतवाणी पर आधारित दो पुस्तकें 'पर्वों का पुंज : दीपावली' और बच्चों के लिए 'हमारे आदर्श' का विमोचन हुआ ।

सिद्धपुर (गुज.) : महर्षि कर्दम की तपस्थली, सांख्य-अवतार भगवान कपिल की अवतारभूमि सिद्धपुर में ३ दिवसीय सत्संग व पूर्णिमा दर्शनोत्सव सम्पन्न हुआ । पवित्र कार्तिक माह में आध्यात्मिक स्पन्दनों से युक्त सिद्धभूमि सिद्धपुर में ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद बापूजी की आत्मस्पर्शी वाणी ने अलौकिक समाँ बाँधा । इस घोर कलियुग में भी सामूहिक रूप से हजारों साधकों का ध्यान की गहराइयों में प्रवेश... सहज में हो रहे आसनों, मुद्राओं और यौगिक क्रियाओं का दृश्य... आजकल के वैज्ञानिकों के लिए तो दाँतों तले उँगली दबा लेनेवाली बात है ।

पूज्यश्री ने इस तीर्थभूमि की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा : ''समुद्रमंथन के बाद, शिवजी, इन्द्र आदि देवताओं के साथ भगवान विष्णु ने लक्ष्मीजी सहित यहाँ निवास किया था । श्री श्रीजी पधारी थीं, इसीलिए इसे 'श्रीपुर' कहा जाता था । शिवजी पधारे थे अतः इसे 'शीपुर' कहा जाता था । ईसा पूर्व ११९८ में सिद्धराज जयसिंह के नाम से इसका नाम 'सिद्धपुर' हुआ । यही वह स्थान है जहाँ कपिल भगवान ने माता देवहूति को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था ।

साधना की दृष्टि से इस सिद्ध क्षेत्र की उपयुक्तता को देखते हुए १९ नवं. को पूज्यश्री ने ४ दिवसीय साधना शिविर की घोषणा की, जिसमें 'चयन कमेटी' द्वारा विशेष रूप से चुने हुए ७१५ साधक-साधिकाओं को प्रवेश दिया गया । सरस्वती तट, समोड़ा (सिद्धपुर) के क्षेत्र में २० से २३ नवम्बर तक आयोजित इस तुरंत घोषित शिविर में भजनानंदी भक्तों ने आत्मानंद की झलक का आस्वादन किया । ईश्वर कहीं सातवें आसमान पर नहीं, अपने हृदय में ही विराजमान है - यह शास्त्रों में सुना था । पर यहाँ उसका प्रत्यक्ष अनुभव किया धनभागी शिविरार्थियों ने । आत्मानंद के उन क्षणों की, ध्यान की उन गहराइयों की अनुभूति प्रत्येक के जीवन का अभूतपूर्व क्षण था । नहीं भुलाये जा सकेंगे कभी, पूज्यश्री के सान्निध्य में बीते वे अनमोल दिन...